Psychology

मनोविज्ञान– मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ 'मन का अध्ययन' है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है– Psycho+logy जिसका अर्थ 'व्यवहार का अध्ययन' होता है। यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को 'आत्मा का अध्ययन' बताया है। जबकि मध्ययुग में मनोविज्ञान को 'मन का विज्ञान' कहा जाता था। आधुनिक मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स, विलियम वुण्ट आदि ने मनोविज्ञान को 'चेतना का विषय' बताया तथा 19वीं शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों में watson, skinner, pavlov आदि ने मनोविज्ञान को 'व्यवहार का अध्ययन' बताया।

- Woodworth के अनुसार, मनोविज्ञान ने पहले अपनी आत्मा का त्याग किया एवं व्यवहार विधि को अपना लिया।
- Watson के अनुसार, मनोविज्ञान आचरण एवं व्यवहार का यथार्थ विज्ञान है।
- मैकडूगल के अनुसार, मनोविज्ञान व्यवहार का धनात्मक विज्ञान है।

शिक्षा मनोविज्ञान– शिक्षा मनोविज्ञान का जनक थार्नडाइक को कहते है। थार्नडाइक ने मनोविान का प्रयोग शिक्षा के विकास के लिए किया था और बताया कि प्राणी में सीखने की प्रवृत्ति उसके व्यवहार को परिवर्तित करती है।

शिक्षा मुख्यतः मनुष्य के मानसिक संतोष को प्रभावित करने वाली वाह्य प्रेरणा (External motivation) है।

भौतिकवादी सिद्धांत

- चार्वाक के अनुसार, मनुष्य के लौकिक जीवन में सुख की अनुभूति शिक्षा का कारण है।
- Herbert spencer के अनुसार, शिक्षा का अर्थ अतःशक्तियों को वाह्य जीवन से जोड़ना है।
- शंकराचार्य के अनुसार 'सा विद्या या विमुक्ते' अर्थात् शिक्षा वह है जो मोक्ष प्रदान करे।
- स्वामी विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मा का सर्वोत्तम विकास है।

वर्तमान समय में शिक्षा का प्रयोग मुख्यतः दो रूप में किया जाता है–

i. प्रयोग के रूप में
ii. परिणाम के रूप में

✷ मनोविज्ञान के प्रथम प्रयोगशाला 1879 ई0 में विलियम वुण्ट द्वारा जर्मनी के लिपजिंग वि0वि0 में किया गया। इसलिए, विलियम वुण्ट को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है।

✷ 1900 में M.N. Sengupta द्वरा kolkata में प्रथम भारतीय प्रयोगशाला की स्थापना की गई। इसलिए, Sengupta को भारतीय प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है।

✷ उत्तर प्रदेश में मनोविज्ञान प्रयोगशाला Prayagraj (1954) में स्थित है।

अभिवृद्धि एवं विकास

यह मानव जीवन की आवश्यकता एवं महत्वपूर्ण तथ्य माने जाते हैं। शारीरिक रचना एवं आकार में वृद्धि को अभिवृद्धि कहा जाता है जबकि मानसिक, भावात्मक, सामाजिक एवं बौद्धिक पक्षों में परिपक्वता को विकास कहते हैं।

वृद्धि और विकास में अंतर–

वृद्धि	विकास
1. यह मात्रात्मक होता है।	1. यह गुणात्मक होता है।
2. यह मापन योग्य होता है।	2. इसका मापन नहीं किया जा सकता
3. यह निश्चित समय तक चलने वाली प्रक्रिया है।	3. यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
4. इसका कोई निश्चित क्रम नहीं होता	4. यह निश्चित क्रम में चलने वाली प्रक्रिया है।
5. इसमें लक्ष्य निर्धारित नहीं होता।	5. यह लक्ष्य निर्धारित प्रक्रिया होती है।

विकास की अवस्थाएँः

भारतीय दर्शन के अनुसार अवस्थाऐं चार प्रकार की होती हैं।

1. ब्रह्मचर्य 2. वानप्रस्थ 3. गृहस्थ 4. संन्यास

Rosss ने विकास की चार अवस्थायें बताई–

1. शैशवावस्था 2. बाल्यावस्था 3. किशोरावस्था 4. प्रौढ़ावस्था

फ्रायड ने विकास की 7 अवस्थायें बताई तथा इरिक्सन ने विका की 8 अवस्थायें बताई।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक ने विकास की दस अवस्थाऐं बताई।

i. गर्भावस्था– यह अवस्था मानव विकास की सुसुप्त अवस्था या आंतरिक पर्यावरण की अवस्था कही जाती है। गर्भावस्था 1 माह या 280 दिनों की अवस्था होती है। इस अवस्था को मुख्यतः 3 भागों में विभाजित किया जाता है।

- **डिम्बावस्था (0–15 दिन)–** यह पूंसवन से दो सप्ताह की अवस्था होती है। इसमे नवीन जीवन निर्माण की क्रिया होती है। शिशु माता के रक्त से भोजन प्राप्त करता है।
- **पिण्डावस्था (15–60 दिन)–** इसमें बालक के सभी अंगो का निर्माण होता है। इस कारण इसे अंग–निर्माण की अवस्था कहा जाता है।
- **भ्रूणावस्था–** यह 220 दिन की अवस्था होती है। इसमे मानवीय भ्रूण का सर्वाधिक तीव्र विकास होता है तथा बालक में सुनने एवं अधिगम करने की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है।

ii. शैशवावस्था–

- स्टैग के अनुसार, ''जीवन के प्रथम दो वर्षो में बालक अपने भावी जीवन का शिलान्यास करता है।

- ब्रिजेस के अनुसार ''लगभग दो वर्षो में बालक में सभी संवेगों का विकास हो जाता है।
- वेलेन्टाइन के अनुसार, ''शैशवाकाल सीखने का आदर्शकाल है।'
- क्रो एण्ड क्रो के अनुसार, ''20वीं शताब्दी बालकों की शताब्दी है।''
- रॉस के अनुसार,'' शिशु कल्पना का नायक है। अत: उसकी भली प्रकार से निर्देशन आपेक्षित है।''
- गैसेल के अनुसार, '' बालक प्रथम छ: वर्ष में 12 वर्ष से दो–गुना सीखता है।''
- वॉटसन के अनुसार, ''शैशवावस्था में सीखने की तीव्रता अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा तीव्र होती है।''
- फ्रॉयड के अनुसार ''जिसे जो बनना है, वह प्रारंभिक 5 वर्षो में बन जाता है।
- इरिक्शन के अनुसार, ''बालकों में समाजीकरण की प्रथम अवस्था शैशवावस्था है।

शैशवावस्था को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जाता है–

→ शैशवावस्था या पूर्व शैशवावस्था (0–3 वर्ष)

→ पूर्व बाल्यावस्था या उत्तर शैशवावस्था (3–6 वर्ष)

शैशवावस्था को दो वर्गो में विभाजित करने का कार्य वैलेन्टाइन ने किया था। इसने बताया कि बालकों में विकास एक निश्चित गति से चलता रहता है। यह अवस्था व्यक्गित्व के निर्माण की प्रथम अवस्था होती है। इसमें बालक में ग्रहणशीलता तथा मस्तिष्क तीव्र रूप में कार्य करता है।

✷ **फ्रायड** ने इसे भावी **'जीवन की आधारशिला'** तथा **वाइगोट्स्की** ने **''गुड्डे–गुड़ियों की अवस्था''** कहा है।

यह अवस्था **'स्वप्रेम की अवस्था'** होती है। जिसे **<u>नॉर्सिसिजम</u>** कहा जाता है। 2 वर्ष में बालकों में संवेग प्रदर्शन प्रारंभ होने लगता है।

✷ प्रारम्भ में बालकों का संवेग उतेजना मात्र होता है।

✷ वॉटसन के अनुसार जन्म के समय बालकों में 3 मूल संवेग पाये जाते हैं– भय, प्रेम और क्रोध।

✷ बालकों में व्यवहार मूल प्रवृत्ति के आधार पर होता है। फ्रायड ने इसे लिबिडो (काम प्रवृत्ति) कहा है।

प्रारंभिक शैशवावस्था मुख्य अवस्था होती है। बालक इसमें मुख के द्वारा इच्छाओं की पूर्ति करता है।

जैसे– अंगूठा चूसना, स्तनपान, चम्मच चूसना आदि।

✷ बालकों में प्रेम का प्रदर्शन ग्रंथि प्रभाव के कारण होता है। **मातृप्रेम ओडिपस ग्रंथि** से एवं **पितृ प्रेम <u>इलेक्ट्रा ग्रंथि</u>** के कारण होता है।

✷ जन्म के समय बालकों में औसत लंबाई 51 सेमी पायी जाती है। बालक–बालिकाओं से लगभग 1.5 सेमी अधिक लंबे होते हैं। प्रथम वर्ष में शिशु की औसत लंबाई लगभग 73 सेमी होती है।

✷ जन्म के समय बालकों का वजन लगभग 8 पौंड होता है। जन्म के समय बालकों के मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम होता है।

✷ जन्म के समय बालकों में लगभग 300 हड्डियाँ पायी जाती है। छठे माह में बालकों में अस्थायी दाँत या दूध के दांत निकलना प्रारंभ होते हैं। एक वर्ष में अस्थायी रूप से 20 दांत निकलते हैं

✷ जन्म के समय बालकों के हृदय की धड़कन अनियंत्रित होती है।

✷ जन्म के समय बालकों के बाल का रंग भूरा होता है।

शैशवावस्था की विशेषताएँ–

1. इस अवस्था में बालकों में सर्वाधिक तीव्र वृद्धि होती है।
2. यह पूर्णत: अर्न्तमुखी व्यवहार की अवस्था होती है।
3. यह तीव्र शारीरिक विकास की अवस्था है।
4. इसे अनुकरण अधिगम की अवस्था कहते हैं।
5. जन्म के समय बालकों के हृदय की धड़कन 140 बार प्रति मिनट होती है।
6. इस अवस्था को खेल–खिलौनों की अवस्था कहा जाता है–
7. यह अवस्था स्वकेंद्रित या आत्मप्रेम की अवस्था है।
8. इस अवस्था में बालकों में मूल प्रवृत्ति पर आधारित व्यवहार होता है।
9. इसे 'परनिर्भरता की अवस्था कहते हैं।
10. इस अवस्था में बालक प्रत्यक्षात्मक अनुभव द्वारा अधिगम करता है।
11. सवंगों के प्रदर्शन एवं अकेले खेलने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

iii. बाल्यावस्था:–

बाल्यावस्था को आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने मुख्यत: तीन भागों में बाँटा है–

- पूर्व बाल्यावस्था (3-6 वर्ष)
- मध्य बाल्यावस्था (6-9 वर्ष)
- उत्तर बाल्यावस्था (9-12 वर्ष)

1. **पूर्व बाल्यावस्था–** इसे उत्तर शैशवावस्था या पूर्व बाल्यावस्था कहा गया है। इस अवस्था में बालकों में **अनौपचारिक व्यवहार** की प्राप्ति होती है। बालक जो देखता है उसी को सत्य मानकर व्यवहार करता है। इसमें **तर्क की कमी** होती है।
2. **मध्य बाल्यावस्था–** इस अवस्था को **संचयकाल** कहा जाता है। इसमें बालक का व्यवहार सम वयस्कों से अंत:क्रिया के आधार पर परिभाषित होता है। इसे प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश की अवस्था, औपचारिक शिक्षा की अवस्था एवं शारीरिक गतिविधियों की अवस्था कहते हैं।

✷ क्रो एण्ड क्रो ने बताया कि, इस अवस्था में सर्वाधिक शारीरिक गतिशीलता पायी जाती है। इसलिए इसे भ्रमण की अवस्था/गंदी अवस्था (Dirty Age) कहा जाता है।

✷ कोल एण्ड ब्रुस ने बताया कि इसे 'संवेगात्मक' विकास का अनोखा काल कहा जाता है।

✷ रॉस ने इसे छद्म् या परिपक्वता का काल कहा है।

✷ स्टैग ने इसे खिलौनों की आयु (Game Age) कहा है।

✷ सिगमन फ्रायड ने इसे काम की प्रसुप्तावस्था कहा है।

इस अवस्था में बालकों में समूह निर्माण जिज्ञासा तथा मूर्त संक्रियात्मक व्यवहार विकसित होने लगते हैं। इस अवस्था में बालकों में सूचना एकत्रित करने तथा सृजनात्मकता का विकास होने लगता है।

3. **उत्तर बाल्यावस्था–** इसे परिपाक काल की अवस्था कहा जाता है।

✷ इस अवस्था में बालकों की लंबाई 5–7 सेमी बढ़ती है। एवं मस्तिष्क का विकास लगभग 95% हो जाती है।

✷ इस अवस्था में 22 से 24 स्थाई दाँत आ जाते हैं।

✷ बालकों में सामूहिक खेल की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है तथा गोडार्ड ग्रंथि के स्राव के कारण बालिकाओं में महिला योजित गुण तथा बालकों में पुरूष योजित गुण की वृद्धि होने लगती है।

✷ इस अवस्था में बालिकाओं में सखी भाव और बालकों में सखा भाव बढ़ने लगता है।

बाल्यावस्था की विशेषताएँ–

1. इस अवस्था में बालक सार्थक शब्दों का उपयोग करने लगता है।
2. इस अवस्था में बालक में उच्च जिज्ञासा पायी जाती है।
3. स्टेनले हॉल ने इसे **''कार्य और कारण का संबंध जानने की अवस्था''** कहा है।
4. इसे आत्मनिर्भरता की अवस्था भी कहते हैं।
5. इसमें बालकों में सामाजिक और नैतिक गुणों का विकास होने लगता है।
6. संग्रह की प्रवृत्ति, झूठ बोलने की प्रवृत्ति तथा समूह निर्माण की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है।
7. इस अवस्था में रूचियों में परिवर्तन होता है तथा काम की प्रवृत्ति की न्यूनता पायी जाती है।
8. इस अवस्था में बालकों में पर्यावरण के अनुरूप व्यवहार करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

iv. किशोरावस्था–

- हैडो कमेटी के अनुसार, बालकों के विकास का प्रारंभ जन्म से होता है परंतु वास्तविक विकास किशोरावस्था में होता है। इस अवस्था में बालक मनःस्थिति से तीव्र संवेगात्मक स्थिति विकसित करने लगता है। इससे बालकों में कल्पनात्मक विकास होने लगता है।
- स्टेनले हॉल ने इसे संघर्ष, तनाव, विरोध तूफान, की अवस्था कहा है।
- किल पैट्रिक के अनुसार यह जीवन का सबसे कठिनतम काल होता है।
- रॉस के अनुसार, किशोरावस्था शैशवावस्था की पुनरावृत्ति है।
- वैटेन्टाइन के अनुसार, इसे घनिष्ठ एवं व्यक्तिगत मित्रता की अवस्था उत्तर किशोरावस्था कहा है।

a. बालिकाओं में बालकों से 2 वर्ष पहले किशोरावस्था प्रारंभ होता है।

b. इस अवस्था में संवेगात्मक उत्थल–पुथल के कारण, इसे समस्या की अवस्था कहते हैं।

c. यह स्थिति सदैव चंचल होती है।

d. इस अवस्था में बालिकाओं एवं बालकों के मांसपेशियों में दृढ़ता आती है। बालक मांसपेशियों को सबल (उत्साही) तथा स्वस्थ बनाने का प्रयास करता है, जबकि बालिकाऐं स्वंय को आकर्षणयुक्त बनाने का प्रयास करती है।

e. इस अवस्था में बालक समाज में सम्मान पाने का प्रयास करता है। एवं विशिष्ट पहचान बनाने के लिए श्रम करता है। इस अवस्था में बालकों में वातावरण के साथ समायोजन की कमी पायी जाती है, जिसके कारण बालक में हताशा, निराशा, कुष्ठा एवं नास्तिक पाया जाता है।

f. इस अवस्था में बालकों में उच्च नैतिकता का विकास होता है तथा उद्दीपकों के आकर्षण के कारण बालक मादक पदार्थों के प्रति आकर्षित होते हैं।

g. इस अवस्था में बालकों में तुलनात्मक स्थिरता आने लगती है, स्वयं को मानसिक संतुष्टि प्रदान करने के लिए समाज के साथ अनुकूलन करने लगते हैं।

किशोरावस्था की विशेषताएँ–

1. किशोरावस्था एक कल्पनाशील अवस्था होती है।
2. इस अवस्था में बालक में अमूर्त चिंतन विकसित होने लगता है। इसी कारण इस अवस्था को दिवास्वप्न (Day Drening) अवस्था कहते हैं।
3. इस अवस्था में बालकों में मनोरंजन करना, पत्र–पत्रिकायें पढ़ना सर्वाधिक प्रिय होता है।
4. किशोरावस्था आदर्शवादी अवस्था होती है।
5. इस अवस्था में बालकों मे सर्वाधिक बहुभाषा, संकेतभाषा एवं बहुअधिगम की प्रवृत्ति पायी जाती है।
6. इस अवस्था में सामाजिकता में सहभागिता की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है।

बालविकास में मानसिक विकास– बाल विकास में मानसिक विकास के लिये आगमन एवं निगमन चिन्तन का होना आवश्यक माना जाता है। शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में निगमनात्मक तर्क विकसित होता है।

बालकों में भाषा विकास– बालकों में भाषा विकास का सिद्धांत चोमस्की ने दिया था।

1. बालकों में जन्म से 3 माह तक किसी प्रकार का भाषा विकास नहीं होता है।
2. 3 माह–6 माह तक बालकों में स्वनिम भाषा का विकास होता है।
3. 6–12 माह तक रूपिम भाषा का विकास होता है।

Psychology

4. प्रथम वर्ष में बालक छोटे–छोटे शब्दों के छोटे वाक्यों का प्रयोग करता है
5. द्वितीय वर्ष में दो शब्दों के छोटे वाक्यों का प्रयोग करता है।
6. तृतीय वर्ष में सार्थक शब्दों का प्रयोग एवं संख्या दोहराने लगता है।
7. चौथे वर्ष में बालक 10 तक गिनती एवं पहाड़ा याद करना एवं अक्षर लिखना प्रारंभ करता है।
8. 5वें वर्ष में बालक में व्याकरण का प्रयोग प्रारंभ हो जाता है।
9. 6वें वर्ष में बालक सरल प्रश्नों का उत्तर देता है, शरीर के अंगो को बताने लगता है।
10. 7वें वर्ष में संयुक्त एवं जटिल शब्दों को खोजने लगता है।
11. 8वें वर्ष में छोटी–छोटी कहानियाँ एवं कविताएँ याद करने लगता है।
12. 9वें वर्ष में बालक बौद्धिक संक्रिया (Mental work) जैसे– जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग।
13. 10वें वर्ष में बालक अपना स्वयं कार्य करने लगता है।
14. 11वें वर्ष में बालक में तर्क, चिन्तन
15. 12वें वर्ष में समस्या समाधान की क्षमता विकसित होने लगती है।

स्वनिम– बालकों के मुख से शान्त ध्वनि या साँस की आवाज हो, स्वनिम कहा जाता है।

रूपिम– अक्षर को रूप प्रदान करने का प्रयास करना ही, रूपिम कहा जाता है।

✷ स्वनिम ध्वनि की सबसे छोटी–इकाई होती है।

संवेगात्मक विकास– संवेग प्राणी के शारीरिक उत्तेजना की अवस्था को प्रदर्शित करता है। यह प्राणी के भावात्मक स्थिति को गति प्रदान करने का कार्य करता है।

मनुष्य में कार्य करने की प्रेरणा संवेगो के माध्यम से प्रकट होती है। संवेगों का विकास परिस्थितियों के आधार पर होता है। संवेग से कार्य करने की प्रेरणा शक्ति प्राप्त होती है। संवेग स्थिति या भाव को प्रकट करते हैं, लेकिन संवेग अस्थाई एवं परिवर्तनशील होते हैं। 1908 में मैकडुगल ने संवेगों का अध्ययन करके बताया कि संवेग मूल प्रवृत्ति पर आधारित होती है तथा संवेगो की संख्या 14 होती है एवं संवेग का विकास बाल विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

शैशवावस्था में संवेग विकास–

1. शैशवावस्था में संवेग उत्तेजना मात्र होता है। रोना, चिल्लाना, हाथ–पैर पटकना आदि।
2. फ्रायड ने शैशवावस्था के संवगों का मुख्य कारण लिबिडो (काम प्रवृत्ति) को माना है, जिस कारण बालकों में नार्सिज्म (आत्मप्रेम) की प्रवृत्ति पायी जाती है।

बाल्यावस्था में संवेग विकास–

1. यह संवेग के स्थायित्व का काल होता है।
2. कोल एवं रूस के अनुसार, बाल्यावस्था संवेगात्मक विकास का आदर्शकाल कहा है।
3. इस अवस्था में बालकों के संवेगों में शिष्टा आ जाती है जिसके कारण उनमें नैतिक मूल्यों का विकास होने लगता है।

किशोरावस्था में संवेग विकास–

1. किशोरावस्था में सवंगों में अस्थिरता पायी जाती है, इसी कारण स्टेलने हॉल ने ''इस अवस्था को संघर्ष, तनाव, तूफान एवं विरोध की अवस्था कहा है।''
2. यह विरोधी मनोदशाओं की अवस्था होती है।
3. फ्रायड के अनुसार, ''मन में काम की तीव्र प्रत्याशा के कारण स्वप्रेम, विषम लिंगी प्रेम तथा समलिंगी प्रेम की प्रवृत्ति पायी जाती है।
4. वुडवर्थ के अनुसार, ''संवेग व्यक्ति की उत्तेजित दशा होती है।''
5. वेलेन्टाइन के अनुसार ''उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण संवेग की स्थिति उत्पन्न होती है।''

सामजिक विकास– बालकों का सामाजीकरण जन्म से प्रारंभ होता है। बालक जिस समाज एवं संस्कृति के अनुरूप रहता है, उसका व्यवहार उसी प्रकार हो जाता है।

सामाजिक विकास निम्न प्रकार से होता है–

शैशवावस्थ में सामाजिक विकास–

1. बालकों में पूर्व–बाल्यावस्था में सामाजिक उद्दीपक को देखकर प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। जैसे– आवाज एवं प्रकाश से प्रभावित होना।
2. व्यक्तियों को देखकर मुस्कुराना आदि।
3. 2 वर्ष की अवस्था में बालक घर का सक्रिय सदस्य बन जाता है।
4. 3 वर्ष की अवस्था में बालकों में सामाजिक संबंध स्थापित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
5. 5 वर्ष की अवस्था में बालकों में नैतिक मूल्य विकसित होने लगते हैं।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास–

1. इसे **'प्राथमिक विद्यालय प्रवेश की अवस्था'** कहा जाता है।
2. यह समूह (Gorg Age) बनाने की अवस्था होती है। (6 से 12 वर्ष)
3. बालकों में सहयोगात्मक खेल एंव खेलरूचि के कारण सामाजिक विकास होता है।

किशोरावस्था में सामजिक विकास–

1. इस अवस्था में बालकों में मैत्री भाव के कारण सामाजिक संबंध स्थापित होते हैं।
2. लैगिंक समानता के आधार पर समाजीकरण का निर्माण होता है।
3. समान व्यवसाय (शिक्षा) से समाजीकरण निर्मित होता है।
4. उत्तर किशोरावस्था में बालकों में सबसे तीव्र समाजिक विकास होता है।
5. व्यवस्था की सफलता एवं असफलता समाजीकरण को प्रभावित करती है।

अनुवांशिकता एवं वातावरण

वंशानुक्रम – वंशानुक्रम किसी व्यक्ति के पूर्वजों के गुणों के संचय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अर्थात् एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गुणों का स्थानान्तरण ही वंशानुक्रम कहलाता है।

मानव में 23 जोड़े गुणसूत्र पाये जाते हैं, जिसमें 23वाँ जोड़ा गुणसूत्र लिंग निर्धारण का कार्य करता है।

1865 ई0 में आस्ट्रिया ब्रुन शहर में प्रमुख पादरी ग्रेगर जॉन मेण्डन ने वशानुक्रम की जाँच करके वंशानुक्रम का प्रथम सिद्धांत दिया था। इन्होंने अपना प्रयोग मटर के दाने (पाइसम सेटाइवम) पर किया था।

ग्रेगर जॉन मेण्डल के अनुसार, बालकों में माता–पिता के जीन के माध्यम से शारीरिक एवं मानसिक गुणों का संचरण होता है। इसके सिद्धांत को वंशानुक्रम के समानता का सिद्धांत कहा जाता है।

→ विकासवादी सिद्धांत का समर्थन लैमार्क ने दिया था।

→ योग्यतम या संघर्ष का सिद्धांत डार्विन ने दिया था।

अनुवांशिकता/वंशानुक्रम का सिद्धांत–

1. **प्रत्यागमन का सिद्धांत–** किसी माता–पिता के गुणों के विपरीत बालकों मे विकास करने वाले अन्य गुणसूत्रों को व्यत्क्रम या प्रत्यागमन कहा जाता है।

उदाहरण– बुद्धिमान माता–पिता के संतान यदि मूर्ख हो या कम बुद्धि वाले माता–पिता के सन्तान प्रतिभाशाली या तीव्र बुद्धि वाले हों।

2. **निरंतरता का सिद्धांत–** यह सिद्धांत अनुवांशिकता के निरंतर विकासकी प्रक्रिया को परिभाषित करता है, इसके विकास की गति को निर्धारित किया जाता है। इसके अनुसार विकास की गति मंद होती है। जबकि शैशवावस्था एवं किशोरावस्था में यह गति तीव्र होती है। यह सिद्धांत डगलस ने दिया था
3. **बुद्धि का सिद्धांत–** लैमार्क के अनुसार, व्यक्ति में अनुवांशिक गुणों के आधार पर बुद्धि विकसित होती है।
4. **भिन्नता का सिद्धांत** – यह सिद्धांत सोरेन्स ने दिया था और बताया कि प्राणियों में विभिन्नता वंशसूत्रों के संयोग के कारण होता है।
5. **जीव सांख्यिकी सिद्धांत** – यह सिद्धांत फ्रांसिस गाल्टन ने दिया और बताया कि बालकों में आनुवांशिक प्रभाव के विभिन्नतायें पायी जाती हैं।

कोई बालक अपने वंशाक्रमिक गुणों के आधार पर अपने व्यवहार और बौद्धिक योग्यता को प्रकट करता है।

बालकों में पीढ़ियों का प्रभात जीवसांख्यिकी प्रभाव कहलात है। 'फ्रांसिस गाल्टन' ने बताया कि माता–पिता पक्ष से गुणसूत्रीय अनुपात समान होता है। 23वाँ जोड़ा गुणसूत्र लिंग निर्धारण का कार्य करता है जिसके कारण पिता पक्ष से 7 पीढ़ी और माता पक्ष से 5 पीढ़ी का प्रभाव पड़ता है।

6. **समानता का सिद्धांत–** यह सिद्धांत Austria के Father ग्रेगर जॉन मेण्डल ने दिया था। इन्होंने बताया कि समान माता–पिता की संताने समान होती है। प्रत्येक जीव–जन्तु की संतान उन्हीं के अनुरूप होती है। इन्होंने अपना प्रयोग मटर के दाने (पाइसम सेटाइवम) पर किया था।
7. **अर्जित गुणों के अवितरण का सिद्धांत–** इस सिद्धांत के अनुसार माता–पिता के जीवन में अर्जित गुण उनकी सन्तानों में संक्रमित नहीं होते हैं। यह सिद्धांत Woodworth ने दिया था।
8. **अर्जित गुणों का सिद्धांत–** अर्जित गुणों का प्रभाव का सर्वाधिक अध्ययन लैमार्कवाद पर आधारित है। लैमार्क ने अपना प्रयोग अफ्रिका के जिराफों पर किया था और बताया कि जीवन जीने के लिए परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार करना ही अर्जित गुण है, जो अंशतः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रभावित होती है।

आनुवांशिकता का प्रभाव– वंशानुक्रमिक प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। व्यक्ति के जीवन में शारीरिक लक्षणों पर वंशानुक्रमिक प्रभाव पड़ते हैं, जिसका वाहक जीन होता है। यह प्रतिगामी तथा प्रखर दोनों रूप में कार्य करता है। जीन के प्रभाव आंखो का रंग निर्धारित होता है, जिसे समलक्षणी प्रभाव कहते हैं। जैसे– हरी आँखों वाली लड़की (अफ्रीकी जनजाति) प्रतिगामी जीन के जो लक्षण अनुवांशिक रूप से संचारित होते हैं परन्तु प्रदर्शित नहीं होते हैं उन्हें समीनों टाइप कहा जाता है।

- **बुद्धि पर प्रभाव– (कैण्डल, पर्यावरण का बुद्धि पर प्रभाव)** बुद्धि को अधिगम, समायोजन तथा निर्णय लेने की क्षमता कहा जाता है। मानसिक क्षमता के अनुकूल बालकों कें संवेगात्मक क्षमता का विकास होता है। बालक में संवेगात्मक असंतुलन, पढ़ाई या किसी अन्य मानसिक कार्यो को प्रभावित करती है। जिससे मानसिक विकास प्रभावित होता है।
- **चरित्र पर प्रभाव–** यह अध्ययन गोडार्ड एवं डगडेल ने किया था। इन्होंने अपना प्रयोग ज्यूक वंश पर किया और बताया कि बालक के चरित्र पर उसके माता–पिता के चरित्र का प्रभाव पड़ता है।
- **सामाजिक स्थिति पर प्रभाव–** यह अध्ययन विनशिप ने दिया था। इन्होंने बताया कि किसी परिवार या समाज का प्रभाव उसके आने वाली पीढ़ियों पर पड़ता है। इसने अपना प्रयोग ऐलिजाबेथ नाम की महिला पर किया था।

वातावरण– वातावरण वह तत्व है जो व्यक्ति के मूल गुणों को छोड़कर बाकी जीवन के अन्य सभी तत्वों पर प्रभाव डालता है। कुछ मनोवैज्ञानिक वातावरण को सामाजिक वंशानुक्रम कहते हैं जबकि व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक वातावरण को वंशानुक्रम की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं।

→ मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, जीवन एवं अतीत के समस्त प्रभावों का योग वातावरण है।

→ एनास्टेसी के अनुसार, वातावरण वह कारक है जो मनुष्य के जीवन को छोड़कर सभी कारकों को प्रभावित करता है।

OR

→ पैतृक गुण को छोड़कर समस्त जीवन को प्रभावित करने वाला तत्व वातावरण है।

→ थार्नडाइक के अनुसार, वह समस्त बाध्य तत्व जो प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन लायें, वातावरण कहलाता है।

→ क्रो एण्ड क्रो के अनुसार, वातावरण, व्यक्ति के वांछित व्यवहार में परिवर्तन लाकर विकास में सहयोग प्रदान करता है।

→ जिसवर्त के अनुसार, वातावरण मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं–

वातावरण के प्रकार– इसे अन्त: कोशीय वातावरण भी कहा जाता है। यह जन्म से पूर्व अर्थात् गर्भावस्था का समय होता है। इस अवस्था में बालकों के ऊपर वंशानुक्रम एवं कोषारस का प्रभाव पड़ता है। माता में असुरक्षा की भावना, सांवेगिक तनाव, उलझन आदि बालकों में प्रतिकूल प्रभाव डालता है और बालकों में मानसिक विकृति उत्पन्न होने लगती है।

iii. बाह्य वातावरण– बाह्य वातावरण जन्म के बाद की स्थिति होती है। बाह्य वातावरण को चार भागों में विभाजित किया जाता है।

→ भौतिक वातावरण
→ सामाजिक वातावरण
→ आर्थिक वातावरण
→ सांस्कृतिक वातावरण

वातावरण का बालकों पर प्रभाव–

1. **शारीरिक अंतर पर प्रभाव/भौतिक प्रभाव:–** यह सिद्धांत फ्रेज बोन्स ने दिया था और बताया कि भौतिक वातावरण के कारण वशानुक्रमिक प्रभाव तीन पीढ़ियों में शारीरिक अंतर उत्पन्न करता है तथा शारीरिक आधार पर एक वातावरण से दूसरे वातावरण में अंतर प्राप्त किया जाता है।
2. **मानसिक विकास पर प्रभाव:** यह सिद्धांत गोडार्ड ने दिया था। इनके अनुसार उचित सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण न मिलने पर बालकों का उचित विकास नहीं होता है। इन्होंने अपना प्रयोग नील नदी के किनारे रहने वाले बालकों पर किया था।
3. **व्यक्तित्व पर प्रभाव:** यह सिद्धांत कूले ने दिया था। इन्होंने अपना प्रयोग वनयान एवं बर्न्स जनजातियों पर किया था और बताया कि उचित वातावरण में उचित व्यक्तित्व का निर्माण होता है।
4. **जुड़वा बच्चों पर प्रभाव:–** इसका अध्ययन न्यूमैन एवं होलजिंगर किया था। इन्होंने बताया कि पर्यावरण का वृद्धि पर साधारण प्रभाव एंव उपलब्धि पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है।

वंशानुक्रम एवं वातावरा में संबंध–

वंशानुक्रम तथा वातावरण एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति वंशानुक्रम तथा वातावरण का योग नहीं बल्कि गुणनफल है। (B.N. Jha) विकास के किसी अवस्था में वंशानुक्रमिक तथा वातावरणीय पदार्थ उसमें अनुकूलन तथा समायोजन की क्षमता में वृद्धि करते हैं।

जैसे– ऐवेरान के जंगली (मोगली)

मैकाइवर एवं पेज – आनुवंशिकता तथा पर्यावरण एक–दूसरे के पोषक हैं।

वुडवर्थ – व्यक्ति, वंशानुक्रम एवं वातावरण का गुणनफल होता है।

आनुवंशिकता तथा वातावरण का शैक्षिक महत्व–

विकास की वर्तमान विचारधारा में प्रकृति और पालन–पोषण दोनों को महत्व दिया गया है। बालक के संपूर्ण व्यवहार वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्त: क्रिया पर आधारित होतो हैं जिसे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया द्वारा अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है।

अधिगम

अधिगम मुख्यत: किसी भी व्यक्ति के व्यवहार में होने वाला स्थायी परिवर्तन होता है या अधिगम को हम किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया कहते है। अधिगम मुख्यत: एक व्यापक शब्द है, जो व्यक्ति के जीवन में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया से संबंधित होता है।

→ wood worth के अनुसार अधिगम विकास की प्रक्रिया है।

→ क्रो एंड क्रो के अनुसार, आदत, ज्ञान एवं अभिवृत्ति का अर्जन ही अधिगम है।

→ मार्गन एवं किंग के अनुसार, अधिगम अभ्यास या अनुभूति के परिणाम स्वरूप व्यवहार में होने वाला स्थायी परिवर्तन है।

→ स्किनर के अनुसार, अधिगम व्यवहार में उत्तरोत्तर अनुकूलन की प्रक्रिया है।

अधिगम की विशेषताएँ

1. अधिगम प्रयोजनपूर्ण होता है।
2. अधिगम रचनात्मक होता है।
3. अधिगम स्थानांनतरणीय होता है।
4. अधिगम व्यक्तिगत एवं सामाजिक होता है।
5. अधिगम वातावरणीय व्यवहार की ऊपज है।
6. अधिगम खोज–परक होता है।

शिक्षण तथा अधिगम में अंतर

शिक्षण

1. शिक्षण में अधिगम निहित होता है।
2. शिक्षण का प्रमुख तथ्य पारस्परिक अंत:क्रिया होता है।
3. शिक्षण पर मनोवैज्ञानिक दार्शनिक तथा सामाजिक सिद्धांतों का प्रभाव पड़ता है।
4. शिक्षण ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का विकास करता है।
5. शिक्षण में प्रशिक्षण, अनुदेशन तथा अधिगम का समावेशन होता है।

अधिगम

1. अधिगम के लिए शिक्षण तथा अनुदेशन सहायक है, आवश्यक नहीं है।
2. अधिगम व्यवहार का परिवर्तन होता है।
3. अधिगम मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होता है।
4. यह औपचारिक एवं अनौपचारिक का परिणाम होता है।
5. अधिगम में परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण होती है। (गैने का सिद्धांत)

अधिगम के सिद्धांत

1. **थार्नडाइक का सिद्धांत –** एडवर्ड एल. थार्नडाइक एक अमेरीकी मनोवैज्ञानिक थे। इन्होंने उद्दीपन और अनुक्रिया (S-R) के आधार पर अधिगम का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इन्होने अपने सिद्धांत में किसी प्राणी के अधिगम की प्रमुख विशेषता उसके कार्य शैली को माना और कहाकि त्रुटि तथा प्रयास के आधार पर व्यवहार में होने वाला परिवर्तन ही अधिगम है।

i. **अधिगम का मुख्य नियम–** इसके अनुसार थार्नडाइक ने तीन आयाम प्रस्तुत किए हैं–

- **तत्परता का नियम –** प्राणी अधिगम के लिए तैयार या तत्पर हो तभी अधिगम प्रभावी होता है। यह तत्परता शारीरिक एवं मानिसिक दोनों प्रकार का होता है। तत्परता में प्राणी की सक्रियता बढ़ जाती है। और उसे कार्य करने में आनंद की अनुभूति होती है।
  शिक्षक के लिए उपयोगिता– शिक्षक इस नियम का पालन करते हुए कक्षा में अनुशासन स्थापित करता है तथा प्रश्नोत्तर विधि द्वारा बालकों को मानसिक रूप से अधिगम के लिए तत्पर करता है।
- **प्रयास का नियम–** इसका अर्थ है कि शिक्षक अधिगम द्वारा अभ्यास को बेहतर बनाना है। थार्नडाइक ने बताया कि हम उस कार्य को सीखना चाहते हैं जिसका परिणाम हितकर हो अर्थात् प्रभाव संतोषजनक होने पर प्राणी में प्रयास की मात्रा बढ़ जाती है।
  शिक्षक के लिए उपयोगिता– शिक्षण कार्य करते समय शिक्षक को बालकों का उत्साह बढ़ाना चाहिए तथा व्यवस्थित पाठ्यक्रम के अंतर्गत शिक्षण कार्य करना चाहिए जिससे बालकों में अभिरूचि बनी रहे।
- **प्रभाव का नियम–** प्रभाव उद्दीपन एवं अनुक्रिया के संबंधों को मजबूत बनाता है। इसे संतोष का नियम कहते है। यदि परिणाम हमारे पक्ष में नहीं होता है, यह असंतोष के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

1930 में इस सिद्धांत मे पुनर्बलन (दंड/पुरस्कार) को जोड़ा गया और कहा गया कि किसी कार्य का प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप में अधिगम को प्रभावित करता है।

शिक्षक के लिए उपयोगिता– मूल्यांकन करने में सहायक होता है एवं बालकों के अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

ii. **थार्नडाइक ने पाँच प्रकार के गौण नियम बताए हैं–**

- बहुप्रतिक्रिया का नियम
- आंशिक प्रतिक्रिया
- आत्मीकरण (Law of Assinilation) – प्राप्त नवीन ज्ञान को अपने पूर्वज्ञान से स्थायित्व।
- साहचर्य (सादृश्यता) (Associative)– जोड़ना या समानता
- मूल्यांकन

2. **पावलव का सिद्धांत–** पावलव रूस के मनोवैज्ञानिक थे। इन्होंने अधिगम में अनुबंधन (co-relation) के आधार पर 'अधिगम का अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत कहा जाता है। इन्होंने संबंध प्रत्यावर्तन (conditioning Response) के आधार पर प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन को अधिगम कहा है। पावलव के सिद्धांत type-s अधिगम सिद्धांत कहा जाता है। इन्होंने अपना प्रयोग कुत्ते पर किया था। पावलव शल्य चिकित्सक (Master of surgeon) तथा जानवरों के डाक्टर थे।

अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत (C-R Theory) के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात प्राकृतिक अनुक्रियाओं की व्याख्या की जाती है। प्राकृतिक उद्दीपक प्राकृतिक अनुक्रिया के साथ जुड़ते जाते हैं।, जिसे अनुकूलित अनुक्रिया कहते हैं।

जैसे– कुत्ते के सामने भोजन आने पर लार स्राव का होना या शिशु के सामने दूध की बोतल प्रस्तुत करने पर शिशु का उछलना आदि।

इस सिद्धांत मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुनरावृत्ति को माना जाता है।

शिक्षक के लिए उपयोगिता–

1. प्राथमिक कक्षाओं में TLM का उपयोग करना तथा छात्रों को TLM के माध्यम से अधिगम कराना।
2. Map. चित्र आदि के माध्याम से बालकों में अधिगम प्रवृत्ति विकसित करना।
3. अनुकूलन द्वारा भाषा विकास। जैसे– वस्तु दिखाकर शब्द सिखाना।
4. तमनोवृत्ति एवं आदतीकरण में सुधार करना।

3. कोहलर का सिद्धांतः –

इनके सिद्धांत को अर्न्तदृष्टि, या सूझ का सिद्धांत कहा जाता है। कोहलर एक गेस्टालटवादी मनोवैज्ञानिक थे। इन्होने 1925 ई0 में 'Mentality of Apes' मानव के संज्ञानात्मक अधिगम का अध्ययन किया और कहा कि सूझ का आधार कल्पना होता है। इन्होने अपना प्रयोग सुल्तान नामक वनमानुष पर किया था। इनके अनुसार अधिगम सूझ के कारण उत्पन्न होता है तथा प्रभावी होता है।

विशेषता–

- प्राणी की प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया में एकाएक पुर्नगठन की प्रक्रिया ही सूझ है।
- सूझ अचानक उत्पन्न होने वाला ज्ञान है।
- सूझ प्राणी का संज्ञानात्मक विकास है।
- आयु एवं अनुभव के साथ सूझ बढ़ती है।
- सूझ व्यक्ति में लक्ष्य, बाधा, तनाव, संगठन, पुर्नसंगठन, के आधार पर किया जाता है।

शिक्षक के लिए उपयोगिता–

i. प्राथमिक कक्षाओं में उपयोगी नहीं होता है।

ii. यह सिद्धांत विषयवस्तु को संगठित रूप में प्रस्तुत करने में सहायक होता है।

Psychology

iii. यह रचनात्मक कार्यो के लिए उपयोगी होता है।

iv. छात्रों के सामने पूर्ण समस्या का प्रस्तुतीकरण करना चाहिए।

v. स्पष्ट उद्देश्य होन पर ही अर्न्तदृष्टि का विकास होता है।

vi. यह बालकों को स्वयं खोज करके अधिगम करने या ज्ञान का अर्जन करने के लिए प्रेरित करता है।

✷ गेस्टालटवाद का जनक–मैक्स वरदाइमर

✷ गेस्टाल्ट शब्द – एक जर्मन शब्द है जिसका अर्थ 'पूर्ण या समग्र' होता है। इसे कोफ्का ने दिया था।

5. **चिन्ह् अधिगम सिद्धांतः–** यह सिद्धांत एडवर्ड चार्ल्स टालमैन ने दिया था इस सिद्धांत को प्रत्याशा सिद्धांत भी कहते हैं। इसमें टालमैन ने भूल–भूलैया के आधार पर चूहों पर प्रयोग किया और कहा कि संज्ञानात्मक व्यवहार का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है। समग्रता किसी विषय वस्तु के विशेष अंशा को जानने में सहायक होता है।

6. **सामिप्य अनुबंधन अधिगम सिद्धांत–** यह सिद्धांत एडविन रे गुथरी दिया था। इन्होंने बताया कि उद्दीपक और अनुक्रिया पुनर्बलन से नहीं बल्कि समीपता के कारण प्रभावी होते हैं। जब उद्दीपक और अनुक्रिया के मध्य सहसंबध स्थापित होता है तभी अधिगम होता है। इन्होंने अपना प्रयोग बिल्ली पर किया था।

7. सामाजिक अधिगम सिद्धांत– यह सिद्धांत canada के मनोवैज्ञानिक अलबर्ट वैण्डुरा ने दिया था। इन्होने बताया कि बालकों का संपूर्ण अधिगम प्रकृति के आधार पर होता है। बालक जो कुछ सीखते हैं सामाजिक अनुकूलन और सामाजिक अनुकूलन के द्वारा सिखते हैं। Open school पद्धति सामाजिक अधिगम का एक केंद्र है, जिसे सर्वप्रथम ओटोवा (कनाडा) में वैण्डुरा द्वारा किया गया था।

8. **सीखने का स्थानान्तरण/अधिगम–अन्तरण (Transfer of Learning)**– अधिगम के स्थानान्तरण से तात्पर्य किसी सीखे गये ज्ञान, विषय, क्रिया, आदत, कुशलता, अभ्योिग्यता का अन्य परिस्थितियों में उपयोग करना है।

क्रो एवं क्रो के अनुसार, अधिगम का एक क्षेत्र में प्राप्त अनुभव दूसरे क्षेत्र में प्रयोग करना, अधिगम स्थानान्तरण है।

वुडवर्ड के अनुसार, अधिगम से प्राप्त ज्ञान का प्रयोग भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में करना तथा व्यवहारात्मक परिवर्तन लाना, अधिगम स्थानान्तरण है।

अधिगम का स्थानान्तरण मुख्यतः 6 प्रकार का होता है–

i. **सकारात्मक स्थानान्तरण** – जब एक विषय का अधिगम दूसरे विषय के अधिगम में सहायक होता है तो इसे सकारात्मक या धनात्मक अधिगम स्थानान्तरण कहते हैं। जैसे– गणित मे सीखे गए ज्ञान का प्रयोग भौतिक विज्ञान में करना।

ii. **नकारात्मक स्थानान्तरण–** जब एक विषय या कौशल का अधिगम दूसरे विषय या कौशल अधिगम में कठिनाई उत्पन्न करता है, तो उसे नकारात्म अधिगम स्थानान्तरण कहते हैं।

iii. **क्षैतिज स्थानान्तरण** – जब एक ही स्तर पर सीख गया ज्ञान या एक ही कक्षा के विषय में सीखा गया ज्ञान उसी कक्षा मे दूसरे विषय में सहायक हो, तो उसे क्षैतिज स्थानान्तरण कहते है।

iv. **लंबवत स्थानान्तरण–** जब स्तर पर प्राप्त ज्ञान का प्रयोग आगे चलकर उच्च स्तर पर ज्ञान या कौशल को सीखने में सहायता प्रदान करे तो इसे लंबवत स्थानान्तरण कहते हैं। कक्षा 12 में सीखा गया भौतिक विषय का ज्ञान आगे चलकर Engg और Technology सीखने में सहायता प्रदान करेगा।

v. **एक पक्षीय स्थानान्तरण** – इसे पार्श्विक स्थानान्तरण (Lateral Transfer) कहा जाता है। जब शरीर के किसी एक अंग द्वारा अर्जित कार्यकुशलता उसी अंग के दूसरी कार्यकुशलता को प्रभावित करे तो इसे एक पक्षी स्थानान्तरण कहते हैं। जैसे– दाहिने हाथ से कार्य करने वाला व्यक्ति हर कार्य को दाहिने हाथ से करने का प्रयास करेगा।

vi. द्वि पक्षीय या द्विपाश्विक स्थानान्तरण– जब शरीर के एक अंग द्वारा अर्जित कार्यकुशलता का प्रभाव शरीर के दूसरे अंग पर पड़ता है तो इसे द्विपक्षीय या द्विपार्श्विक स्थनान्तरण कहते हैं। जैसे– दाएँ हाथ से लिखने वाला व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर बांय हाथ से भी लिख सके।

अधिगम वक्र– अभ्यास द्वारा अधिगम की मात्रा, गति एवं उन्नति को ग्राफ पेपर पर प्रदर्शित करना अधिगम वक्र कहलाता है। इसे x तथा y अक्ष द्वारा प्रदर्शित करते हैं। अधिगम वक्र के तीन भाग या अवस्थायें होती हैं– प्रारंभ, मध्य एवं उच्च।

प्रारंभिक अवस्था में सीखने की गति सर्वाधिक तीव्र होती है। मध्य अवस्था में सामान्य तथा अंतिम अवस्था में अधिगम निम्न होने लगता है। इसके मुख्य चार प्रकार होते हैं–

i. **सरल रेखीय अधिगम वक्र–** जब सीखने की गति समान हो तो इसे सरल रेखीय या समान अधिगम वक्र कहा जाता है–

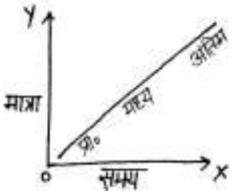

ii. **नतोदर अधिगम वक्र–** इसे ऋणात्मक अधिगम वक्र भी कहते हैं। इसमें प्रारंभ में तीव्र अधिगम तथा मध्य और अंत में निम्न अधिगम होता है।

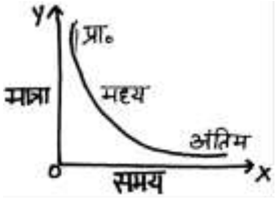

iii. **उन्नतोदर अधिगम वक्र–** इसे धनात्मक अधिगम वक्र भी कहते हैं। इसमें प्रारंभ और मध्य में निम्न अधिगम तथा अंत में उच्च अधिगम होता है।

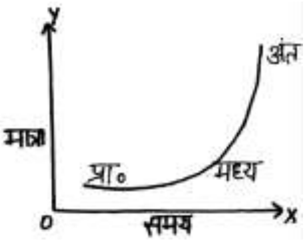

iv. **सीढ़ीदार या s प्रकार अधिगम वक्र–** मंद तीव्र मंद अधिगम की मात्रा को s प्रकार अधिगम वक्र या सीढ़ीदार अधिगम वक्र कहा जाता है।

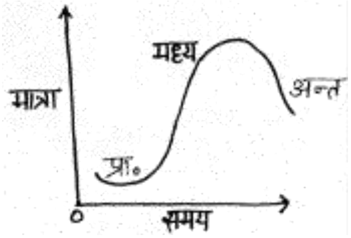

अधिकगम पठार (Plateau of Learning)–

अधिगम पठार वह स्थिति है जहाँ अधिगम की मात्रा में वृद्धि और कमी दोनों रूप जाती है तो इस स्थिति को सीखने का पठार या अधिगम पठार कहते हैं।

<u>रॉस</u> के अनुसार, सीखने में मुख्य विशेषता मात्रा को प्रदर्शित करती है और वह स्थान जहाँ से सीखने की मात्रा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करती हो, अधिगम पठार कहलाती है। गैरेट के अनुसार–पठार वह अवस्था होती है जहाँ अधिगम प्रक्रिया रूक जाती है।

रैक्स एंड नाइट के अनुसार– अधिगम पठार सीखने की उस अवधि को कहते हैं जहाँ अधिगम में कोई उन्नति न हो।

पठार बनने के कारण–

1. शारीरिक व मानसिक अस्वस्थता।
2. थकान
3. प्रेरणा एवं उत्साह की कमी।
4. ध्यान अथवा रूचि की कमी।
5. दूषित वातावरण।
6. अभ्यास की कमी।
7. सीखने की गलत, अनुचित या अरूचिकर विधियों का प्रयोग।
8. परिपक्वता।

अधिगम पठार का निवारण–

1. सीखने में रूचि उत्पन्न करके।
2. प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देंगे।
3. कहानी तथा रोचक शिक्षण विधियों का प्रयोग करेंगे।
4. मनोरंजन तथा विश्राम का उपयोग करेंगे।
5. उपयुक्त वातावरण बनायेंगे।
6. अनावधान को दूर करेंगे।

बुद्धि

बुद्धि सामान्य तौर पर सोचने–समझने तथा निर्णय लेने की योग्यता होती है। इसे व्यक्ति को जन्मजात शक्ति कहा जाता है। बुद्धि में कार्यात्मक, रचनात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष की विविधता पाई जाती है।

- woodworth के अनुसार ''बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।''
- टरमन के अनुसार, ''बुद्धि का अमूर्त विचारों के बारे में सोचने की योग्यता
- वुडरो के अनुसार ''बुद्धि ज्ञान अर्जन करने की क्षमता है।''
- डीयरवार्न के अनुसार ''बुद्धि सीखने या अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता है''
- बिने के अनुसार, ''बुद्धि चार शब्दों मे निहित है– ज्ञान, आविष्कार, निर्देश और आलोचना।''
- थार्नडाइक के अनुसार, '' सत्य या तथ्य के दृष्टिकोण से उत्तम प्रतिक्रिया की शक्ति बुद्धि है।''

बुद्धि के प्रकार (Type of Intelligency)–

थार्नडाइक ने बुद्धि के मुख्यतः तीन प्रकार बताए हैं–

i. **मूर्त बुद्धि–** ऐसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति मूर्त वस्तुओं के बारे में सोचता है तथा आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करता है तथा उपयोगी बनाता है, उसे मूर्त बुद्धि या व्यवहारिक बुद्धि कहते हैं।

ii. **अमूर्त बुद्धि–** ऐसी मानसिक क्षमता जिससे व्यक्ति, शब्द, चरित्र, संकेत एवं अन्य माध्यम से आवश्यक चिंतन करता है तथा विचारों, कल्पनाओं आदि के द्वारा बड़ी–बड़ी समस्याओं का हल निकालता है, उसे अमूर्त या सैद्धांतिक बुद्धि कहते हैं। ऐसी बुद्धि वाले बालक दार्शनिक, गणितज्ञ, कहानीकार, कलाकार तथा चित्रकार होते हैं।

iii. **सामाजिक बुद्धि –** ऐसी क्षमता उन लोगों में पायी जाती है जो मिलनसार प्रवृत्ति के होते हैं एवं सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन करने तथा 'हम' की भावना का पालन करने वाले होते हैं।

बुद्धि निर्माण के सिद्धांत–

1. **एक कारक सिद्धांत–** यह सिद्धांत Paris University के प्रो0 अल्फ्रेड बिने ने दिया था। इस सिद्धांत के समर्थक साइमन स्टर्न टरमन एवं एबिगहास थे। इन्होंने बताया कि बुद्धि एक अविभाज इकाई है जो मानव के समस्त क्रियाओं को संचालित करती है। बुद्धि के इस सिद्धांत को निरंकुश सिद्धांत (theory of dictation ship) भी कहा जाता है।

2. **द्विकारक सिद्धांत–** इस सिद्धांत का प्रतिपादन Britain मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन (1904 ई0) में किया और बताया कि बुद्धि एक कारकी न होकर दो कारक वाली होती है– सामान्य और विशिष्ट कारक।

- **सामान्य कारक (G- कारक)–** यह एक जन्मजात या सहज प्रत्यय कारक होता है, जासे प्रत्येक व्यक्तियों में अलग–अलग प्रकार का पाया जाता है। जिस व्यक्ति में G-factor अधिक होता है वह व्यक्ति सामान्य की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होता है। इस कारण स्पीयरमैन ने G-factor को मानसिक ऊर्जा कहा है।
- **विशिष्ट कारक (s-factor)-** यह विशिष्ट योग्यता कारक है। प्रत्येक s-factor व्यक्ति में उसके विशिष्टताओं का परिचय कराता है। s-factor को अर्जित योग्यता कारक कहा जाता है। जिसे प्राणी वाहृय वातावरण के आधार पर सीखता है।

3. **बहुकारक सिद्धांत–** यह सिद्धांत थार्नडाइक ने दिया था और बताया की बुद्धि किसी एक उपलब्धि या एक कारकों से नहीं होती है। बल्कि बुद्धि का निर्माण अनेक कारकों से होता है। इनके अनुसार ''बुद्धि असंख्या स्वतंत्र कारको से बनी होती है। जिसमें प्रत्येक कारक किसी विशिष्ट मानसिक योग्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं।'' थार्नडाइक का यह सिद्धांत 'बुद्धि का आणुविक सिद्धांत' कहलाता है।

4. **बुद्धि का त्रिआयामी सिद्धांत–** इसे बुद्धि रचना या त्रि–विमिय सिद्धांत कहा जाता है। इसका निर्माण जे0पी0 गिलफोर्ड ने किया था और बताया कि बुद्धि 3 आयामों पर निर्भर होता है–

a. **विषय–वस्तु–** विषय–वस्तु से तात्पर्य उस क्षेत्र से है जिस पर संक्रिया की जाती है, अर्थात् विषय–वस्तु, आकृति, प्रतीक, भाषा तथा व्यवहार से निर्मित होता है।

b. **संक्रिया–** गिलफोर्ड ने कहा कि बुद्धि कुछ प्राथमिक योग्यताओं की संरचना मात्र है जिसमें संक्रिया एक मानसिक योग्यता के रूप में क्रियाशील होती है। यह मानसिक योग्यताएँ पाँच प्रकार की होती है–

- **संज्ञा–** पूर्वज्ञान का वर्तमान स्थिति से संबंध स्थापित करना संज्ञान कलाता है।
- **स्मृति–** पूर्व अनुभव का वर्तमान स्थिति में पुनः स्मरण करना स्मृति कहलाता है।
- अपसारी चिंतन– जब तक समस्या का समाधान भिन्न–भिन्न तरीके से किया जाए या कोई व्यक्ति विभिन्न आयामों में चिंतन करके परिस्थिति के अनुकूल निर्णय ले तो इसे अपसारी चिंतन या out of the box कहा जाता है।

- **अभिसारी चिंतन–** अभिसारी चिंतन निश्चित समय निश्चित नियम तथा निश्चित दिशावाला होता है। इस प्रकार की योग्यता में व्यक्ति सोचने में समर्थ होता है परंतु उसका चिंतन निगमनात्मक आधार पर होता है। इसे Inbox thinking कहा जाता है।
- मूल्यांकन– गिलबोर्ड ने बताया कि व्यक्ति जिस परिस्थिति में या जिस समस्या में कार्यरत रहता है उसके संपूर्ण क्षेत्रों के बारे में अवलोकन करके परिणाम तक पहुंचना ही मूल्यांकन है।

c. **उत्पाद–** उत्पाद बीमा से तात्पर्य संक्रिया और विषय–वस्तु के मध्य अंतः क्रिया के परिणामों से है। इसमें 6 प्रकार की परिणामों की व्याख्या की जाती है।

5. **पदानुक्रमिक सिद्धांत–** यह सिद्धांत पी.ई. वरनन ने दिया था। इसने बताया कि बुद्धि क्रमद्धता के आधार पर विकसित होती है। जिसमें सामान्य योग्यता आवश्यकताओं के आधार पर जुड़ी होती है। जबकि विशिष्ट योग्यता का संबंध ज्ञानात्मक क्रियाओं से होता है। यह विधि कारक विश्लेषण (factor Analysis) पर आधारित है।

बुद्धि परीक्षण

बुद्धि परीक्षणों का प्रारंभ सर्वप्रथम Americaमें माना जाता है। परंतु बुद्धि लब्धि के रूप में टरमन द्वारा इसका स्थायी परीक्षण प्रारंभ किया गया।

बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

- व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
- सामूहिक बुद्धि परीक्षण

Note: 1890 ई0 में कैटल ने मानसिक परीक्षण शब्द दिया था।

i. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण–

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण में एक समय में एक व्यक्ति का परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण का प्रारंभ बिने ने किया था। इसे मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है–

1. **बिने–साइमन का मानक बुद्धि परीक्षण–** यह बुद्धि का प्रथम परीक्षण है जिसे Paris University ने prof Alfred Bine ने दिया था। इसमें मंदबुद्धि के बालकों एवं विद्यालय के बालकों को शामिल किया गया था। यह परीक्षण 3 से 15 वर्ष के बालकों के लिए निर्मित किया गया था। प्रत्येक वर्ष के बालकों के लिए 5 प्रश्न निर्धारित थे। 4 वर्ष के लिए 4 प्रश्न तथा 11 और 13 वर्ष के लिए कोई प्रश्न नहीं था।

   बीने स्केल का मुख्य दोष मानसिक आयु को वास्तविक आयु से कम माना जाता था।

2. **स्टेनफोर्ड–बिने बुद्धि परीक्षण** – इस परीक्षण का प्रारंभ staneford University में हुआ था। यह परीक्षण टरमन तथा बिने ने मिलकर दिया था। यह मानक 2 से 14 वर्ष के बालकों के लिए है। इसमें कुल 90 प्रश्नावलियाँ है। 11 और 13 वर्ष के लिए कोई प्रश्न नहीं है।

   व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों में समय और धन दोनों अधिक लगता है। इसलिए इसे व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों का दोष कहा जाता है।

- **व्यक्तिगत क्रियात्मक परीक्षण:–** इस परीक्षण के परीक्षण का प्रयोग उन लोगों पर किया जाता है जिन्हें भाषात्मक ज्ञान नहीं होता। यह परीक्षण निम्न है–

1. पोरटियस भूल भूलैया परीक्षण–

इस परीक्षण में 3 से 14 वर्ष के बालकों को शामिल किया जाता है। इसमें बालकों के बुद्धि का विकास उनके क्रियात्मक आधार पर मापा जाता है।

2. वैश्लर वैलयू परीक्षण– इसे व्यस्क बुद्धि मापनी (Adult intelligency test) कहते हैं। प्रारंभ में इसे 10 से 60 वर्ष के व्यक्तियों का अध्ययन होता था परंतु 1955 ई0 में इसमें संशोधन करके 16 से 64 वर्ष के व्यक्तियों का बुद्धि मापन किया जाता है। इसमें 5 मौखिक तथा 5 क्रियात्मक प्रश्न शामिल होते हैं।

   भाटिया बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण है।

ii. **सामूहिक बुद्धि परीक्षण–** इस परीक्षण का प्रारंभ प्रथम विश्व युद्ध में America में हुआ था। इसे मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है–

- सामूहिक भाषात्मक परीक्षण : 1. आर्मी अल्फा परीक्षण
  2. सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण
- सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण: 1. आर्मी बीटा परीक्षण
  2. शिकागो बुद्धि परीक्षण

भारत में बुद्धि परीक्षण का प्रारंभ C.H. राइस ने 1922 से प्रारंभ किया। इनके परीक्षण को Indian Bine Test कहा गया था। राइस ने ही शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को PPT (Paper Pencil Test) कहा था।

डॉ. जे0 मोदे ने शाब्दिक समूह परीक्षण, भाटिया ने बैटरी बुद्धि परीक्षण, जलोटा ने सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण तथा प्रयाग मेहता ने भारतीय सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Indian Group Intelligency test) दिया था।

बुद्धि परीक्षण

- **व्यक्तिगत**
  - भाषात्मक
    1. बिने साइमन
    2. स्टेनफोर्ड–बिने
  - क्रियात्मक
    1. वेश्लर वैल्यू
    2. पारेटियस भूल भूलैया
- **सामूहिक**
  - 1. आर्मी अल्फा
    2. सेना सामान्य वर्गीकरण
  - 1. आर्मी बीटा परीक्षण
    2. शिकागो बुद्धि परीक्षण

बुद्धि–लब्धि– बुद्धि–लब्धि के बारे में सर्वप्रथम एक सुझाव के रूप में स्टर्न ने मानसिक आयु की संगणना 1912 में प्रस्तुत की तथा 1916 में टरमैन ने बुद्धि–लब्धि का सिद्धांत प्रस्तुत किया और बताया कि मानसिक आयु की गणना के स्थान पर बुद्धि–लब्धि की गणना करने से किसी भी व्यक्ति के वास्तविक बुद्धि का ज्ञान हो सकता है। इसने इसका सूत्र प्रस्तुत किया–

$$\text{बुद्धिलब्धि (IQ)}=\frac{\text{मा सक आयु } (M.A)}{\text{वासत वक आयु } (C.A)}\times 100\ (up\ to\ 16\ years)$$

✷ 16 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि की गणना करते समय उनकी वास्तविक आयु का मान 16 रखते हैं।

✷ किसी बड़े समूह के लिए बुद्धि लब्धि की गणना NPC (Normal Probability Curve) 'सामान्य प्रायिकता वक्र' के आधार पर किया जाता है।

Q. एक 10 वर्ष का बालक जिसकी बुद्धि लब्धि 120 है, तो उसके मानसिक आयु की गणना कीजिए।

Ans. $IQ=\frac{M.A.}{C.A.}\times 100 \Rightarrow 120=\frac{M.A.}{10}\times 100$

⇨ M.A. = 12 Year

Q. एक 20 वर्ष के बालक की बुद्धि–लब्धि 160 है, तो उसके मानसिक आयु की गणना कीजिए।

160 × x = 16 × 100

x = $x=\frac{16\times 100}{160}$

x = 10 वर्ष (मानसिक आयु)

Q. एक बालक की मानसिक आयु 8 वर्ष तथा वास्तविक आयु 12 वर्ष है। बुद्धि–लब्धि ज्ञात कीजिए।

Sol. $I.Q=\frac{M.A.}{C.A}\times 100=\frac{8}{12}\times 100$

$\frac{200}{3}=66\frac{2}{3}=66.66 \Rightarrow 67$

Q. एक बालक की मानसिक आयु 12 वर्ष तथा वास्तविक आयु 10 वर्ष है। बुद्धि–लब्धि ज्ञात कीजिए।

Sol. $I.Q.=\frac{M.A.}{C.A.}\times 100=\frac{12}{10}\times 100=120$

Q. एक बालक जिसकी मानसिक आयु 8 वर्ष और वास्तविक आयु 16 वर्ष है। बुद्धि–लब्धि ज्ञात कीजिए।

So. $I.Q.=\frac{8}{16}\times 100 \Rightarrow 50$

✷ समान वास्तविक आयु एवं मानसिक आयु की स्थिति में बालक उच्च सामान्य बुद्धि धारित करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में बुद्धि परीक्षण का महत्व–

शैक्षिक मार्गदर्शन, छात्र वर्गीकरण, लैंगिक विभिन्नता, व्यवसायिक मार्गदर्शन तथा अनुसंधान में बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

छात्र चयन में योग्यता–

छात्रों के प्रवेश, छात्रवृत्ति तथा विशिष्ट योग्यताओं को बढ़ाने के लिए तथा उचित एवं सही शिक्षण प्रक्रियाओं का उपयोग करने के लिए बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

Personality (व्यक्तित्व)

Personality यूनानी भाषा के Persona शब्द से बना है। जिसका अर्थ 'मुखौटा या नकाब' होता है। जिसे हिन्दी में 'व्यक्तित्व' तथा अंग्रेजी में 'Personality' कहा गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्ति में जितनी भी आन्तरिक एवं बाह् विशेषताएँ या योग्यताएँ होती हैं, उन सबका संगठित रूप व्यक्तित्व कहलाता है। व्यक्ति के वाह्य गुणों का प्रकाशन उसकी शारीरिक रचना, आंगिक अभिनय, आदत एवं अन्य अभिव्यक्ति, व्यक्तित्व होता है जबकि मनुष्य के आंतरिक गुण संवेग, प्रेरणा, इच्छा, रूचि तथा दृष्टिकोण पर आधारित होता है। गिलफोर्ड – 'व्यक्तिगत गुणों का समन्वित रूप है।''

वुडवर्थ – '' व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की समग्र विशेषता है।''

मन – ''व्यक्तित्व किसी व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीके तथा रूचि पर आधारित होता है।''

➩ ''व्यक्ति के गुणों का मनोशारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उसका एक अनूठा समायोजन स्थापित करता है।''

डेशील – '' व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यहवार का संपूर्ण चित्र होता है।''

<u>व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक:</u>

व्यक्तित्व को मुख्यत: दो कारक प्रभावित करते हैं–

1. वातावरणीय कारक
2. वंशानुक्रमिक कारक

<u>व्यक्तित्व के सिद्धांत</u>

शरीर–रचना सिद्धांत:– शारीरिक रचना के आधार पर व्यक्तित्व को वर्गीकृत करने का कार्य मुख्यत: दो मनोवैज्ञानिक ने किया है–

Seldon के आधार पर–

Seldon ने शारीरिक रचना के आधार पर तीन प्रकार का व्यक्तित्व बताया है–

i. Endomorphic- ऐसे व्यक्ति मोटे तथा स्थूलकाय होते हैं। यह आनंद पंसद भोजन प्रिय आलसी तथा अमूर्त चिंतन वाले होते हैं।

ii. Mesomorphic- ऐसे व्यक्ति दुबले–पतले तथा कृशकाय प्रकृति के होते हैं। यह तनावपूर्ण, अत्यधिक क्रोध करने वाले तथा कम निद्रा लेने वाले होते हैं

iii. Actomorphic- ऐसे लोग सुडोलकाय, मेहनती तथा हमेशा खुश रहने वाले होते हैं।

क्रेशमर के अनुसार– क्रेशमर ने शरीर को मुख्यत: तीन भागों में बाँटा है–

i. **पिकनिक व्यक्तित्व–** क्रेशमर ने स्थूल व्यक्तियें के व्यक्तित्व को आनंद प्रिय, तनाव रहित, भोजन प्रिय तथा आलसी बताया।

ii. **एस्थेनिक व्यक्तित्व–** ऐसे लोग दुबले–पतले तथा अत्यधिक तनाव में रहने वाले होते हैं जल्दी थक जाने एवं अत्यधिक गुस्सा करने वाले होते हैं।

iii. **एथलेटिक व्यक्तित्व –** ऐसे व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ मजबूत कद–काठी के तथा दृढ़ निश्चयी होते हैं। इनमें नेतृत्व की क्षमता पाई जाते हैं।

विमूर्ति व्यक्तित्व (Dysplastic)-

समाजशास्त्री दृष्टिकोण के आधार पर – समाजशास्त्री के आधार पर स्प्रेन्जर ने व्यक्तित्व को छह भागों में बाँटा था–

i. सैधांतिक व्यक्तित्व
ii. आर्थिक व्यक्तित्व
iii. राजनैतिक व्यक्तित्व
iv. सामाजिक व्यक्तित्व
v. धार्मिक व्यक्तित्व
vi. कलात्मक व्यक्तित्व

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर – मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर America के वैज्ञानिक युग ने व्यक्तित्व के 2 प्रकार बताए–

i. अन्तमुर्खी – ऐसे व्यक्ति जो एकांत प्रिय, स्वयं से बात करने वाला, सामाजिक गतिविधियों से दूर काल्पनिक चिंतन करने वाला होता है। उसे अनतर्मुखी व्यक्तित्व कहते हैं।

ii. बहिर्मुखी व्यक्तित्व– ऐसे व्यक्ति जो सामाजिक कार्यो में रूचि लेने वाले मार्गदर्शन प्रदान करने वाले तीव्र निर्णय लेने वाले तथा समस्या–समाधान की विशेषता वाले होते हैं। युंग ने इसे विकासोन्मुखी व्यक्ति कहा है।

iii. उभयमुखी तथा बहिर्मुखी – जिन व्यक्तियें में अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों गुणों की विशेषता पाई जाती है उसे उभयमुखी व्यक्तित्व कहते हैं। इसे संशोधन युग के सिद्धांतों में शामिल किया गया है।

माँग एवं पूर्ति सिद्धांत–

यह सिद्धांत मैश्नलो ने दिया था । मैश्नलो को मानवतावादी मनोविज्ञान का आध्यात्मिक जनक कहा जाता है। मैश्लो ने

व्यक्तित्व के विकास में अभिप्रेरकों को महत्वपूर्ण माना और कहा कि मानव में दो प्रकार के अभिप्रेरक (शारीरिक और अर्जित अभिप्रेरक) होते हैं जो व्यक्तित्व निर्माण करने में महत्वपूर्ण होते हैं। शारीरिक अभिप्रेरक का संबंध दैहिक आवश्यकता या जीवन की आवश्यकता से संबंधित होता है जबकि अर्जित आवश्यकता प्राणी की इच्छाओं पर निर्भर होता है।

शारीरिक माँग सर्वाधिक प्रबल होता है जबकि सामाजिक माँग अनुशासन पर आधारित होता है।

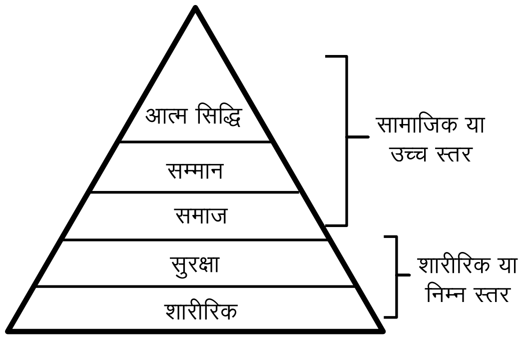

- **शीलगुण सिद्धांत–**
  यह सिद्धांत आलपोर्ट ने दिया था। इन्होंने बताया कि व्यक्ति के व्यवहार का वर्णन करने वाले तत्वों को शील गुण कहा जाता है। यह व्यवहार की संगति तथा स्थिरता को प्रदर्शित करता है।
- टरमन ने बुद्धि–लब्धि के आधार पर व्यक्तित्व का विभाजन किया था तथा थार्नडाइक ने विचार के आधार पर व्यक्तित्व का विभाजन 4 भाग में किया–

1. सूक्ष्म विचार
2. प्रत्यय विचार
3. स्थूल विचार
4. इन्द्रिय प्रधान विचार

- कैटल ने लहरी और अलहरी व्यक्तियों की व्याख्या की।

मनोविश्लेषणवादी व्यक्तित्व– इस विचार में व्यक्तित्व की परिभाषा फ्रायड ने तीन आधार पर दिया है–

i. **इदम् (Id Personality)-** ऐसे लोग जो कल्पनात्मक आधार पर व्यक्तित्व को बनाए रखते हैं उन्हें इदम् व्यक्तित्व कहा जाता है।

ii. **अहं (Ego personality)-** ऐसे लोग जो साहसी, निर्णय लेने वाले तथा घमंडी प्रवृत्ति के होते हैं ।

iii. super ego- ऐसे लोग जो सैद्धांतिक, धार्मिक तथा नियमबद्ध जीवन व्यतीत करते हों।

अंतःस्रावी ग्रंथियों के आधार पर व्यक्तित्व– यह व्यक्तित्व विभाजन कैनन ने किया था।

i. **Thyroid gland**– इसके अधिक स्राव के कारण व्यक्ति महत्वाकांक्षी शासन करने वाला सक्रिय तथा उत्तेजनापूर्ण होता है एवं निम्न स्राव से सुस्त, शरीर से दुर्बल, उदास तथा दुःखी रहने वाला होगा।

ii. **Pitustary gland**– इसके अधिक स्राव से व्यक्ति हँसने वाला तथा मजाक करने वाला प्रसन्नचित तथा दूसरों का ख्याल रखने वाला एवं कम स्राव से दुःखी तथा मानसिक कष्ट प्रदर्शन करने वाला होता है।

iii. **Adrenal gland-** इसके अधिक स्राव होने से व्यक्ति झगड़ालू, लड़ाका तथा मजाक करने वाला एवं मानसिक और शारीरिक श्रम करने वाला होता है। बालकों में समय से पूर्व विकास बालिकाओं में स्थूलता तथा दाढ़ी–मूँछ का आना।

इसके कम स्राव से शारीरिक अस्वस्थता तथा काम प्रवृत्ति की कमी एवं निम्न शारीरिक विकास होता है।

iii. **गोनार्ड ग्रंथि–** इसके अधिक होने से व्यक्ति उत्तेजित, साहसी तथा कामी होताा है तथा न्यून होने से कला, साहित्य, संगीत तथा नृत्य में अधिक प्रवीण होता है।

व्यक्तित्व का मापन– व्यक्तित्व मापन मूर्त और गतिशील धारण होती है। व्यक्तित्व मापन में मुख्यः चार विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. **व्यक्तिनिष्ठ परीक्षण विधियाँ–** व्यक्तित्व मापन की व्यक्तनिष्ठ विधियाँ निम्न हैं–

- **जीवन इतिहास विधि (Case history Method)** – इस विधि में व्यक्ति से संबंधित घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।
- **क्रम निर्धारण मापनी विधि–** ऐसी विधि जिसमें किसी चर की श्रेणी उसकी गहनता तथा बारंबारता का अध्ययन किया जाता है। इसमें 5 या 7 बिन्दुओं का मापन या स्केल तैयार किया जाता है। जिससे छात्र या व्यक्तिों के गुण–दोषों का मापन किया जाता है।
- साक्षातकार विधि– यह व्यक्तित्व मापन का सबसे पुराना तरीका है। इसमें मौखिक रूप में व्यक्ति के विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

2. **वस्तुनिष्ठ विधियाँ–** यह व्यक्ति के वाह्य व्यवहार के अध्ययन से संबंधित है। इस प्रकार के परीक्षण में वस्तुनिष्ठता एवं वैज्ञानिकता के गुण पाये जाते हैं। व्यक्तित्व मापन की यह प्रमुख विधियों में सम्मिलित होता है। इससे संबंधित प्रमुख विधियाँ निम्न है–

- **परिस्थिति परीक्षण (Situation Test)–** इस विधि में व्यक्ति के सामने अलग–अलग परिस्थितियाँ निर्धारित की जाती है और उसमें व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है–
- **प्रश्नावली परीक्षण–** यह मुख्य अप्रक्षेपी परीक्षण है। यह विधि व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों को मापने की विधि है। इसमें कम से कम दस प्रश्नों का उपयोग किया जाता है तत्था व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्यन किया जता है।
  इस परीक्षण के प्रमुख कमी या दोष वैधता एवं विश्वसनीयता की मात्रा का अभाव है।

- **प्रक्षेपी परीक्षण–** प्रक्षेपण का अर्थ व्यक्ति के आंतरिक दशाओं के या अचेतन अभिप्रेरणाओं का अध्ययन करना होता है । इसमें किसी विषय के या व्यवहार के बारे में व्यक्ति का अनुक्रिया ज्ञात किया जाता है।

  प्रक्षेपी परीक्षण एक प्रकार का उपकरण है जो व्यवहार के अज्ञात व अचेनतन तत्वों का परीक्षण करता है। इससे संबंधित प्रमुख परीक्षण निम्न है–

i. **स्याही ध्ब्बा परीक्षण–** इस परीक्षण का निर्माण switzerland के मनोवैज्ञानिक 'हरमन रोर्शाक' ने 1921 में दिया था। इस परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के आंतरिक भावों का अध्ययन किया जाता हैं रोर्शा ने इसमें दस कार्डो का प्रयोग किया है। यह परीक्षण विश्वशनीय तथा वैध माना जाता है।

ii. **TAT परीक्षण–** विषय आत्मबोधन परीक्षण या थेमेटिक अपरसेप्सन टेस्ट। इस परीक्षण का निर्माण 'मार्गन और मुरे' ने 1935 में किया था। इस परीक्षण में 30 धुंधले तथा अस्पष्ट चित्रों का प्रयोग किया जाता है तथा एक चित्र सादा होता है। इस परीक्षण में अचेतन मन तथा व्यक्तिगत विचार और अर्न्तर्द्वन्द्व का अध्ययन किया जाता है। कार्डो को दिखाने का समय 30 सेकेण्ड निर्धारित किया।

✴ TAT- Thematic Apperception Test

iii. **CAT परीक्षण (बाल अन्तर्बोध– Children's Apperception Test)**

यह परीक्षण 'लियोपोड ब्लैक' ने 1948 में दिया था। इसमें 15 कार्ड का उपयोग किया जाता है।

iv. स्वप्न विश्लेषण विधि – यह विधि मनोविश्लेषणवाद पर आधारित है। इसे 'सिम्मंड फ्रायड' ने दिया था। इसमें व्यक्ति के अचेतन मन में दबी इच्छाओं को जानने का प्रयास किया जाता है। इसका प्रयोग मानसिक रोगों के निदान और उपचार में किया जाता है।

व्यक्तित्व परीक्षण

- अप्रक्षेपी
  - वस्तुनिष्ठ: जीवन लेखन, यात्रा वृतांत, कहानी लेखन
  - व्यक्तिनिष्ठ: आत्मकथा, अनुसूचियाँ, प्रश्नावली
- प्रक्षेपी
  - स्याही–धब्बा परीक्षण, TAT, CAT, स्वपन विश्लेषण

व्यक्तिगत भिन्नता और शिक्षा

Individual Differences & Education

एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से पाया जाने वाला शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा व्यवहार–परक अंतर, व्यक्तिगत विभिन्नता कहलाता है।

जेम्स ड्रेवर – औसत समूह से मानसिक, शारीरिक, विशेषताओं में भिन्नता, व्यक्तिगत विभिन्नता है।

H.R. भाटिया– व्यक्ति में अन्तर्निहित लक्षणों में अंतर, व्यक्तिगत विभिन्नता है।

व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण–

थार्नडाइक ने व्यक्तिगत विभिन्नता के पांच कारण बताए थे। टरमन तथा बिने ने व्यक्तिगत विभिन्नता के तीन कारण बताए हैं। विलियम वुण्ड ने व्यक्तिगत विभिन्नता के तीन कारण बताए हैं।

किसी भी समुदाय या समूह में व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण निम्न हैं–

1. जैविक अनुवांशिकता
2. सामाजिकरण
3. लिंग भेद
4. पर्यावरण
5. प्रजाति एवं राष्ट्रीयता
6. शिक्षा एवं पृष्ठीभूमि
7. आर्थिक स्थिति
8. व्यक्तित्व एवं रूचि

व्यक्तिगत विभिन्नता के प्रकार–

व्यक्तिगत विभिन्नता मुख्यत: तीन प्रकार की होती है–

i. शारीरिक विभिन्नता
ii. मानसिक विभन्नता
iii. व्यक्तित्व विभिन्नता

व्यक्तिगत विभिन्नता की शैक्षणिक उपयोगिता– एक कक्षा में भिन्न–भिन्न मानसिक क्षमताओं वाले बालकों को उनके अभिवृत्ति एवं अभिरूचि के आधारपर शिक्षा प्रदान करना, व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति कहलाता है। बालकों में भिन्न–भिन्न आधार पर शिक्षकों के द्वारा शिक्षा ग्रहण करना भी व्यक्तिगत विभिन्नता की शिक्षा कहलाती है। छात्रों के व्यक्तिव का बोध शिक्षक, छात्र एवं अभिभावक के हित में होता है। व्यक्तिगत आधार पर शैक्षिक उपयोगिता निम्न प्रकार की है–

i. विद्यार्थीयों के वर्गीकरण में सहायता।

ii. मंद गति से अधिगम करने वाले बालकों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है।

iii. बालकों को उपचारी शिक्षा प्रदान करने में सहायता करना।

iv. शिक्षण की सीमा तथा उचित मात्रा में प्रगति का निर्धारण करना।

व्यक्तिगत विभिन्नता और शिक्षण विधियाँ– वर्तमान समय में नवीन मनोवैज्ञानिक विधियों के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा कई प्रकार के शैक्षणिक विधियों का समावेशन है। व्यक्तिगत शिक्षण में मुख्य रूप से डाल्टन योजना, प्रोजेक्ट योजना। विनेट योजना, मान्टेसरी पद्धति एवं उपचारी शिक्षण विधियों को शामिल किया जाता है।

✴ विनेट योजना– इस प्रणाली की मुख्य विशेषता सीखने वाले को उसके सीखने की गति के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है।

व्यक्तिगत विभिन्नता एवं पाठ्यक्रम:–

1. पाठ्यक्रम एकमुखी न होकर बहुमुखी होना चाहिए जिसमें बालक रूचि, योग्यता तथा बुद्धि के अनुसार अनुकूल विषयों का चयन कर सके।
2. उच्च योग्यता तथा बुद्धि वाले बालकों का पाठ्यक्रम अधिक समृद्ध होना चाहिए।
3. मंद बुद्धि वाले बालकों का पाठ्यक्रम मूर्त या स्थूल पाठ्य सामग्रियों के समावेश से निर्मित होना चाहिए।
4. पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए।

सृजनात्मकता (Creativity)

किसी व्यक्ति में पुराने कार्यों की अपेक्षा पुराने वस्तुओं से नए रचनात्मकता कार्य करने की प्रक्रिया को सृजनात्मकता या सर्जक कहा जाता है।

थार्नडाइक के अनुसार, जब किसी काय्र का परिणाम नवनूतन हो जो किसी भी समय में उपयोगी तथा मान्य हो वह कार्य सृजनात्तमक कार्य कहलाता है।

सृजनात्मकता की प्रक्रिया का चरण–

रिली तथा लेविस ने सृजनात्मकता की प्रक्रिया के प्रमुख चरण निम्न बताए हैं–

i. समस्या को जानना
ii. तैयारी
iii. समस्या को परिवतर्तित करना
iv. किसी एक विषय पर विचार करना
v. संभावित परिणाम का अनुमान लगाना
vi. उत्तम निष्कर्ष का चयन करना
vii. प्रतिपुष्टि (Feed back)

सृजनात्मकता के सिद्धांत– सृजनात्मक परीक्षणों में अनेक सिद्धांत उपयोगी हैं, जो निम्न हैं–

i. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत– यह सिद्धांत दमित इच्छाओं से संबंधित हैं। इसमें फ्रायड ने लिविडो (काम शक्ति) को केंद्र में रखा था। फ्रायड के अनुसार अचेतन अवस्था में अधिकांश इच्छाऐं दबी होती है दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति ही सृजनशीलता उत्पन्न करती है। सृजनशीलता का प्रारंभ अचेतन काल से होता है। परंतु परिणाम चेतन अवस्था मे प्राप्त होता है। फ्रायड ने व्यक्ति के मूल प्रवृत्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति का ही सृजनशीलता कहा है।

ii. साहचर्यवाद सिद्धांत (Associative Theory)- यह सिद्धांत उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धांत पर आधारित हैं इसका प्रतिपादन रिबॉट (1960 ई0) ने किया था। इसने बताया कि ''साहचर्य के कारण व्यक्ति में अभिनव संगठन उत्पन्न होता है जो सृजनात्मक समाधान को प्रस्तुत करता है।''

iii. बुद्धि सिद्धांत (Intelligency)- यह सिद्धांत गिलफोर्ड (1950 ई0) ने प्रस्तुत किया था। इनके अनुसार सृजनशीलता मानसिक योग्यताओं का समूह है। सृजनशीलता को केन्द्राभिमुखी चिंतन कहा गया है।

iv. **शीलगुण सिद्धांत (CAT Theory)-** यह सिद्धांत आलपोर्ट ने दिया था। इनके अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व के प्रमुख भाग हैं तथा सृजनशीलता व्यक्तियों के शीलगुण में होता है।

R.B Catle ने प्रत्येक व्यक्ति के सृजनशील शीलगुणों की व्याख्या की जिसका समर्थन गिलफोर्ड, टारेन्स आदि ने किया था। टारेन्स ने सृजनात्मक चिनतन परीक्षण (T.T.C.T) Torense test of creatine thinking (1962) में 84 व्यक्तिगत विशेषताओ की सूची प्रस्तुत की थी।

v. **सृजनात्मक स्तर का सिद्धांत– (Double Theory)**

यह सिद्धान्त टेलर ने प्रस्तुत किया था और बताया कि सृजनात्मकता के मुख्यत: पाँच चरण होते हैं–

1. अभिव्यक्ति
2. उत्पादक
3. अन्वेशण (Inventive)
4. नवाचार (innovative)
5. उदयात्मक

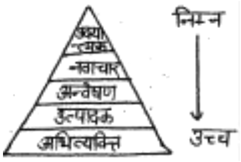

● वाकर मेहंदी और बी.के. पासी ने 1972 ई0 में सृजनात्मकता से संबंधित भारतीय परीक्षण प्रस्तुत किया था।

सृजनात्मकता और बुद्धि के बीच संबंध–

बुद्धि और सृजनात्मकता में धनात्मक संबंध होता है। किंतु निम्न और साधारण सृजनात्मक व्यक्ति बुद्धि में औसत से ऊपर होते हैं। इनमें मुख्य अंतर निम्न है–

बुद्धि

1. यह जन्मजातत शक्ति है
2. यह व्यक्तित्व के आंतरिक गुणों का द्योतक है।
3. इस पर वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता।
4. यह विकासात्मक चरणों में परिवर्तित नहीं होता।

सृजनात्मकता

1. यह अर्जित क्षमता है।
2. यह वाह्य कृतित्व से संबंधित होता है।
3. यह वातावरण से अभिप्रेरित होता है।
4. यह विकास के चरणों द्वारा परिपक्व होता है।

सृजनात्मकता एवं शिक्षा– सृजनात्मकता का विकास शिक्षा द्वारा किया जाता है। छात्रों में मूर्त या अमूर्त किसी प्रकार रचनात्मक कार्यो का विकास होना कल्पना, चिंतन, तर्क आदि शक्तियों का विकसित होना सृजनात्मक पर शिक्षा का धनात्मक व्यवहार प्रकट करता है।

सृजनात्मकता के विकास में अवरोधक तत्व–

यह चार प्रकार के विशेष तत्व हैं जो सृजनात्मक विकास को प्रभावित करते हैं, जिसकी व्याख्या क्रो एंड क्रो ने दिया था।

i. अभिसारी चिंतन– (निश्चित समय में एक निश्चित समाधान)

ii. उपयुक्त वातावरण का अभाव

iii. आत्मविश्वास का अभाव

अभिप्रेरणा (Motivation)

Motivation यूनानी भाषा के मोटेम शब्द से बना है, जिसे अंग्रेजी में Motion या गति कहते हैं। अभिप्रेरणा को किसी व्यक्ति या प्राणी के उन प्रवृत्तियों द्वारा परिभाषित किया जाता है, जिससे प्राणी उत्तप्रेरित होकर किसी कार्य को करने के लिए तत्पर हो जाए। अर्थात् प्राणनी में गति उत्पन्न करने की क्रिया ही अभिप्रेरणा कहलाती है।

- woodworth के अनुसार, 'अभिप्रेरणा किसी व्यवहार को संपन्न करने या किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्मुख करती है।'
- गुड के अनुसार, ' अभिप्रेरणा किसी कार्य को प्रारंभ करने, जारी रखने तथा नियंत्रित करने की प्रक्रिया है।'
- बर्नार्ड के अनुसार, 'जिस लक्ष्य के प्रति पहले कोई आकर्षण नहीं था उस लक्ष्य के प्रति काय्र की उत्तेजना ही अभिप्रेरणा है।'
- स्किनर के अनुसार, 'प्रेरणा सीखने के लिए राजमार्ग है।'

  'Motivaton is the highway of learning.'

- गेट्स के अनुसार, अभिप्रेरणा प्राणी की वह शारीरिक एवं मानसिक दशाएं हैं जो विशिष्ट प्रकार की क्रिया करने के लिए प्राणी को अभिप्रेरित करती है।

अभिप्रेरणा चक्र (Motivation cycle)-

अभिप्रेरणा चक्र में तीन मुख्य तत्व हैं–

i. आवश्यकता– आवश्यकताएँ प्रेरणा के प्रथम चरण होते हैं। व्यक्ति में मूलतः दो आवश्यकतायें हो सकती हैं– जैविक तथा सामाजिक आवश्यका।

ii. अन्तर्नोद/चालकता– अन्तर्नोद किसी प्राणी के बढ़े हुए तनाव की दशा है, जो कार्य और व्यवहार को लक्ष्य की तरफ अग्रसर करती है।

हिलगार्ड ने किसी भी प्रकार के कार्य के लिए अन्तर्नोद को आवश्यकता माना है।

Woodworth पहले मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने अन्तर्नोद शब्द का प्रयोग किया था।

iii. लक्ष्य– लक्ष्य को आवश्यकता की पूर्ति या प्रोत्साहन कहा जाता है। लक्ष्य प्राप्त होते ही नए आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है, इसलिए wood worth ने इसकी व्याख्या धनात्मक एवं ऋणात्मक प्रोत्साहन के रूप में किया है।

अभिप्रेरणा के सिद्धांत–

i. मरे का अभिप्रेरणा सिद्धांत– मरे ने अपने सिद्धांत में मानवीय व्यवहार की व्याख्या आवश्यकताओं के आधार पर परिभाषित किया है। इनके अनुसार तनाव रहित स्थिति संतोषजनक नहीं होती। बल्कि तनाव कम करने की प्रक्रिया संतोषजनक होती है। मरे ने आवश्यकताओं की तालिका प्रस्तुत किया था जिसमें 27 प्रकार की आवश्यकताओं का वर्णन किया था।

ii. उपलब्धि अभिप्रेरणा सिद्धांत– इसे निष्पति अभिप्रेरणा सिद्धांत भी कहा जाता है। यह सिद्धांत डी. मैक्लीलैण्ड ने 1961 ई0 में दिया था और बताया कि–

a. उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले बालक साधारण कठिनाई वाले कार्य को अधिक पसंद करते हैं अर्थात् अत्यधिक कठिन एवं अत्यधिक सरल कार्य इन्हें पसंद नहीं होते हैं।

b. उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले बालक बार–बार प्रयास करके अपने लक्ष्य पर पहुँचना चाहते हैं।

c. उपलब्धि अभिप्रेरकमुखी बालक कार्यों से बचना चाहते हैं। ऐसे बालकों में सूझ–बूस की कमी होती है।

d. शिक्षकों को धनात्मक संतोष के लिए उपलब्धि अभिप्रेरणा पर बल देना चाहिए। असफलता से बचने के लिए अभिप्रेरकों का विकास करना चाहिए।

iii. अभिप्रेरणा का मनोविश्लेषण सिद्धांत–

यह सिद्धांत सिग्मंड फ्रायड ने दिया था। इनके अनुसार अभिप्रेरणा के दो प्रधान अभिप्रेरक हैं– यौन (libido) और अक्रमणता (not working) फ्रांयडके अनुसार, जीवन मूल प्रवृत्ति आनंद (Eras) द्वारा निर्देशित होती है जिसमें आत्मप्रेम, स्वंय की योग्यता बढ़ाना तथा सुख के साधनों मे वृद्धि करने की प्रवृत्ति शामिल होती है। तथा मृत्यु मूल प्रवृत्ति (Thomotos) द्वारा व्यक्ति स्वयं अपने को तथा दूसरों को क्षति पहुँचाता है।

यह संयोग जनित मानव व्यवहार व्यक्ति के इच्छा (id)द्वारा संचालित होते हैं जो अभिप्रेरणा स्तर में परिवतर्न लाते हैं।

iv. वास्तविक अभिप्रेरणा सिद्धांत– यह सिद्धांत 1950 ई0 में हार्लो ने दिया था और बताया कि पुरस्कार या दंड सीखने की प्रक्रिया को स्थायित्व नहीं प्रदान करते बल्कि उच्च अभिप्रेरणा स्तर से किया गया अधिगम स्थायी होता है।

v. मूल प्रवृत्ति का सिद्धांत– यह सिद्धांत मैकडूगल ने 1908 ई0 में दिया था। इनके अनुसार मूल प्रवृत्ति उद्देश्य पूर्ण कार्य करने की प्रवृत्ति सहज एवं जन्मजात शक्तियाँ हैं। ये शक्तियाँ हैं जो हमें व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है।

मूल प्रवृत्ति की विशेषताएँ:

- मूल प्रवृत्तियाँ व्यक्ति की जन्मजात योग्यता होती है।
- मूल प्रवृत्ति के द्वारा किसी भी प्राणी के योग्यताओं का अधिगम किया जाता है।
- मूल प्रवृत्ति स्थायी प्रवृत्ति है।
- मूल प्रवृत्ति परिवर्तित नहीं होती है।

प्रत्याशा सिद्धांत–विक्टर ब्रून

अभिवृत्ति (Attitude)

अभिवृत्ति या मनोवृत्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व की वह प्रवृत्तियाँ हैं जो किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना के प्रति विशिष्ट प्रकार से अनुक्रिया करने के लिए मानसिक सक्रिया उत्पन्न करती है।

अभिवृत्ति एक मनोसामाजिक अवधारणा है जो मुख्यतः तीन प्रकार की होती है–

1. संज्ञानात्मक तत्व– इस तत्व में किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति किसी तत्व के प्रति उसके ज्ञान को प्रदर्शित करती है।

2. भावात्मक तत्व– व्यक्ति की मनोवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना के प्रति सकारात्मक तथा नकारात्मक रूप में प्रस्तुत करना ही भावात्मक अभिवृत्ति कहलाता है।

3. व्यवहारात्मक तत्व– व्यक्ति की मनोवृत्ति किसी क्रिया के प्रति सकारात्मक तथा नकारात्मक व्यवहार करने की संक्रिया संयोजित की हो या तात्कालिक परिस्थितियों में व्यक्ति के द्वारा प्रकट किया जाने वाला व्यवहार व्यवहारात्मक अभिवृत्ति कहलाता है।

वुड के अनुसार, अभिवृत्ति किसी परिस्थिति व्यक्ति या वस्तु के प्रति विशेष ढंग से की जाने वाली प्रतिक्रिया की तत्परता है।

अभिवृत्ति मापन (Attitude scale):-

1972 ई0 में सर्वप्रथम थर्स्टर्न द्वारा तुलनात्मक अभिवृत्ति मापन प्रस्तुत किया गया था, जिसे तुलनात्मक मापन सिद्धांत या तुलनात्मक निर्णय का नियम कहा जाता है।

वर्तमान समय में अभिवृत्ति मापन के मुख्यतः तीन सिद्धांत है–

1. **स्केलिंग विधि (scaling Method)-** स्केलिंग विधि में मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की मानसिक स्थिति का मापन करता है जिससे उसके अभिवृत्ति की गणना की जाती है।

2. **प्रत्यक्ष प्रश्न विधि (Direct question Method):-** शिक्षक द्वारा छात्रों से प्रत्यक्ष प्रश्न पूछकर उनके अभिवृत्ति का मापन करना।

3. **अवलोकन विधि (observation Method):-**शिक्षक छात्रों के दिनचर्या का अवलोकन करके उनके अभिवृत्ति का मापन करता है।

अभिक्षमता (Aptitude)

अभिक्षमता से तात्पर्य उस सहज शक्ति से है जिसमें व्यक्ति प्रयास के द्वारा वृद्धि कर सकता है। अभिक्षमता एक अमूर्त शक्ति है।

- थार्नडाइक के अनुसार, ''सभी व्यक्तियों में अभिक्षमता पाई जाती है। इसलिए यह जन्मजात शक्ति है।''
- गोलमैन के अनुसार, 'अभिक्षमता व्यक्ति के कार्य करने की क्षमता है जो उसके अंतः शक्ति में निहित होती है।''

- Freeman के अनुसार, 'अभिक्षमता उन गुणों के संयोग से निर्मित सेट (cluster) है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने सीखने की क्षमता का पता चलता है।''
- अभिक्षमता का मापन करने के लिए मानक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है, यह परीक्षण निम्न हैं–

1. **सामान्य अभिक्षमता मापन–** ऐसे मानक जिसके द्वारा किसी व्यक्ति या समूह के सामान्य रूचितयों का मापन किया जाए।
2. **भेदक अभिक्षमता –** एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के योग्यता या कौशल में निहित अंतर भेदक अभिक्षमता कहलाता है।
3. **विशिष्ट अभिक्षमता–** किसी भी व्यक्ति के कार्य करने एवं विशिष्ट कौशल का मापन विशिष्ट अभिक्षमता कहलाता है।

अभिरूचि (Interest)

रूचि एक आंतरिक या जन्मजात प्रेरक शक्ति है। रूचि से तात्पर्य किसी वस्तु विषय या क्रिया के प्रति लगाव है, जिससे व्यक्ति को सुख की अनुभूति होती है।

किसी कार्य या लक्ष्य में सफलता प्राप्त करने के लिए अभिक्षमता और योग्यता के साथ रूचि का होना आवश्यक है।

- **क्रो एंड क्रो के अनुसार,** 'रूचि वह प्रेरक शक्ति है जो हमें किसी व्यक्ति या वस्तु के क्रियाओं की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित करती है।''
- **गिलफोर्ड के अनुसार** ''रूचि किसी क्रिया या वस्तु पर ध्यान देने, आकर्षित होने, पसंद करने तथा संतुष्टी प्राप्त करने की प्रवृत्ति है।''
- सुपर के अनुसार, ''रूचियाँ चार प्रकार की होती हैं–

i. प्रदर्शित रूचि
ii. आकलित रूचि
iii. अभिव्यक्त रूचि
iv. सूचित रूचि

सामान्य आधार पर रूचि के दो प्रकार होते हैं–

1. **जन्मजात रूचि–** वे रूचियाँ जो मूल प्रवृत्तियों के कारण विकसित होती हैं, उन्हें जन्मजात रूचि कहते हैं।
   जैसे– भोजन, खेल आदि।
2. **अर्जित रूचि–** वे रूचियाँ जो मनुष्य के वातावरण के कारण विकसित होती है, उन्हें अर्जित रूचि कहते हैं।
   जैसे– वस्त्रों के प्रति रूचि, साहित्य के प्रति रूचि आदि।

छात्रों में रूचि उत्पन्न कराने की विधियाँ–

1. विषयवस्तु की उपयोगिता, आवश्यकता एवं महत्व बताकर।
2. उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग कर।
3. कक्षा में सकारात्मक एवं अनुकूल वातावरण बनाकर।
4. आकर्षक TLM, मनोरंजन, भ्रमण आदि तकनीकों का प्रयोग करके।
5. बालकों के मानसिक और शैक्षिक स्तर के अनुरूप शिक्षण करके।

रूचि मापन (Interest Misurement):- रूचि मापन में कई परीक्षण किए गए हैं परंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूचि परीक्षण स्ट्रांग का व्यवसायिक रूचि परीक्षण है जिसे vocational Interest black test paper कहा जाता है। इसमें कुल 400 प्रश्न हैं जो व्यक्ति के रूचि एवं क्षमता को प्रभावित करते हैं।

स्मृति Momory

स्मृति पूर्व अनुभव द्वारा समस्याओं का समाधान करने की क्षमता है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु, स्थान, घटना या क्रिया को देखता है या अपने अनुभव में उसे प्राप्त करता है तो इसके प्रतीक या चिन्ह् मस्तिष्क में संचित हो जाते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर यह उस संचित अनुभव का उपयोग करने तथा चेतन मन में समस्याओं का समाधान करने में उपयोगी होते हैं। इस मानसिक क्रिया को स्मृति कहते हैं।

वुडवर्थ के अनुसार, ''स्मृति सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग होता है।''

हिलगार्ड के अनुसार, ''स्मृतिवह मानसिक प्रक्रिया है जिसमे अतीत में सीखे हुए ज्ञान अनुभव या कौशल का पुनः उपयोग किया जाता है।

स्मृति के तत्व– स्मृति प्रक्रिया मे मूलतः चार तत्व शामिल होते हैं–

1. सीखना 2. धारण 3. पुनः स्मरण/प्रत्यास्मरण/प्रत्याविज्ञान
4. पहचान/प्रत्याभिज्ञा

स्मृति को प्रभावित करने वाले कारक–

1. शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य
2. रूचि एवं ध्यान
3. अभिप्रेरणा
4. सीखने की इच्छा शक्ति
5. अभ्यास एवं प्रशिक्षण
6. अधिगम सामग्री की प्रकृति
7. शिक्षण विधि एवं शिक्षका का व्यवहार

स्मृति के प्रकारः– स्मृति तीन प्रकार की होती है–

1. **तात्कालिक स्मृति (sensory Meomory)-** किसी तथ्य या सूचना को तत्काल याद करके अभिव्यक्त करना तात्कालिक स्मृति कहलाती है।
2. **लघुकालिक स्मृति (short term Memory)-** किसी सूचना को याद करके 24 घंटा या कुछ अन्य समय तक अभिव्यक्त करना लघुकालिक स्मृति कहलाता है।
3. **दीर्घ–कालिक स्मृति–** किसी तथ्य या सूचना को या किसी घटना को लंबे समय या जीवनपर्यत याद रखना दीर्घकालिक स्मृति कहलाता है।

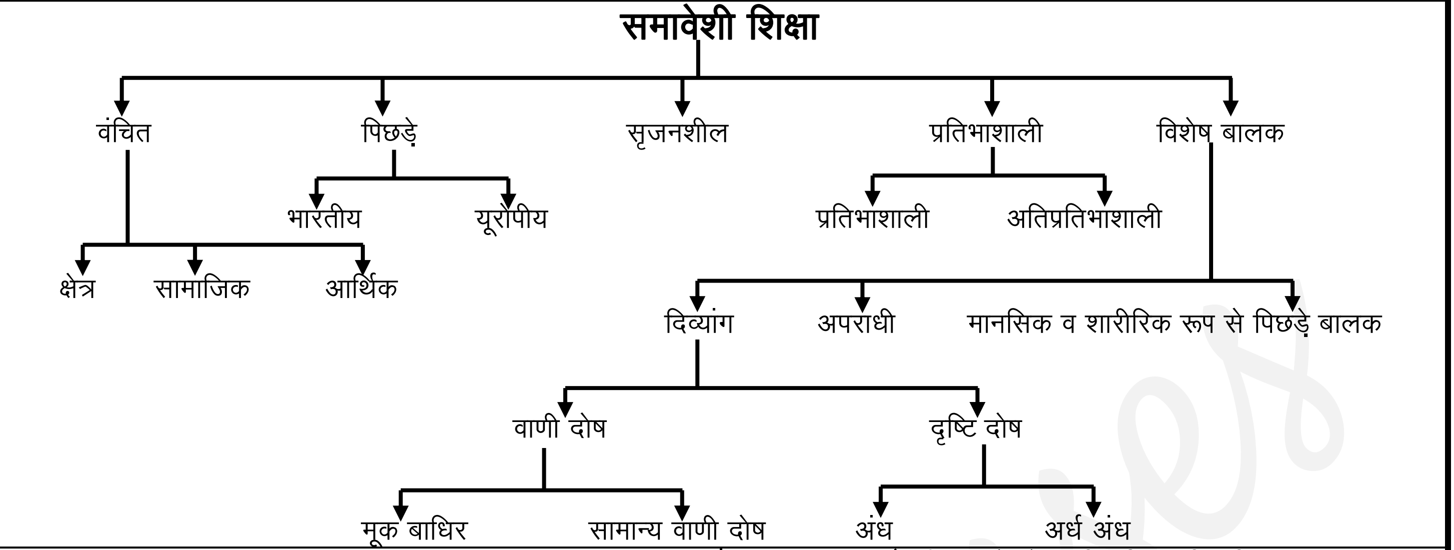

समावेशी शिक्षा–

1. **मूल्यांकन** – मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगम परिस्थिति की उपादेयता निर्धारित की जाती है। मूल्यांकन के द्वारा शिक्षक निर्धारित करता है कि उसके द्वारा उपयोग की जाने वाली शैक्षिक क्रिया एवं विधियों का उचित प्रयोग हो रहा है या नहीं। मूल्यांकन के आधार पर शिक्षक छात्रों की कार्यकुशलता का मापन करता है तथा आवश्यक मापन क्षरा या विधियों का प्रयोग कर सुधार लाने का प्रयास करता है।

- मूल्यांकन का प्रयोग संपूर्ण व्यक्तित्व एवं अधिगम स्थितियों को जानने के लिए किया जाता है।
- विद्यालय में छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के संबंध में प्रदत्तों का संकल्न एवं उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया मूल्यांकन है। **– क्वालेन और हन्ना**
- मूल्यांकन करना किसी वस्तु या प्रक्रिया के महत्व के प्रक्रिया को निर्धारित करना है। **– एडम्स**

मूल्यांकन के उद्देश्य:–

1. बालकों में होने वाले व्यवहार एवं आचरण के परितर्वन का जाँच करना।
2. बालकों के द्वारा अर्जित किया गया कार्यकुशलता एवं कौशल का जाँच करना।
3. बालकों की समस्याओं का निर्धारण करना तथा उनके समस्याओं को जानने की कोशिका करना।
4. बालकों को उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करना।
5. मूल्यांकन द्वारा अध्ययन अध्यापन दोनों का मापन करना।
6. मूल्यांकन द्वारा शिक्षक एवं छात्र की प्रतिपुष्टि प्राप्त करना।

मूल्यांकन के प्रकार– मनोवैज्ञानिक आधार पर मूल्यांकन तीन प्रकार का होता है।

i. **निर्माणात्मक मूल्यांकन–**इसे रचनात्मक मूल्यांकन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक शिक्षण क्रिया के दौरान यह जानने का प्रयास करता है ही छात्रों ने अभिवृत्ति अभिभूति तथा ज्ञान का किस स्तर तक अधिगम किया है। मूल्यांकन अध्याये के बीच–बीच में किया जाता है। जिससे छात्रों के विकास की प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है। निर्माणात्मक मूल्यांकन सतत प्रकार का मूल्याकन है।

ii. योगात्मक मूल्यांकन– इसे अंतिम या संकल्पनात्मक मूल्यांकन कहा जात है। यह मूल्यांकन सत्र मूल्यांकन सत्र की समाप्ति पर उपयोगी होता है, जिसमें शिक्षक यह जाँच करता है कि छात्रों ने किस सीमा तक ज्ञान प्राप्त किया है । इस मूल्यांकन को 'मूल्यांकन को 'उत्पाद निर्माण मूल्यांक' कहा जाता है। यह व्यापक प्रकार का मूल्यांन है।

iii. निदानात्मक मूल्यांकन– जो छात्र शिक्षण प्रक्रिया में असफलहो जाते हैं उनका निदानात्मक आधार पर मूल्यांकन है परंतु नियमित कक्षाओं में किया जाने वाला निदानात्मक मूल्यांकन 'सतत मूल्यांकन' कहा जाता है।

सामान्य आधार पर मूल्यांकन– इस आधार पर दो प्रकार के मूल्यांकन होते हैं–

1. **सतत् मूल्यांकन–** किसी कक्षा या कार्य के नियमित संचालन मे कार्य परिणाम को जानना या अधिगम स्तर का मापन करना, सतत मूल्यांन है।

2. **व्यापक मूल्यांकन–** किसी क्रिया या अधिगम प्रक्रिया के या शिक्षण सत्र के अंत में समस्त अधिगम का मापन करना तथा ज्ञान का स्तर जानना, व्यापक मूल्यांकन कहलाता है।

अच्छे मूल्यांकन की विशेषता– मूल्यांकन के पाँच निर्धारक होते हैं

i. वैधता– किसी परीक्षण की उपयोगिता जिसके लिए निर्धारित की गई हो उसी का अध्ययन करे अर्थात् वास्तव में उसी तथ्य का परीक्षण किया जाए जिसके लिए परीक्षा आयोजित की गई हो परीक्षण की वैधता कहलाती है। जैसे– घड़ी का समय बताना उसकी वैधता होती है।

ii. विश्वसनीयता– एक ही परीक्षण का परिणाम भिन्न–भिन्न परंतु समतुल्य परिस्थितियों में समान प्राप्त होता है तो इसे परीक्षण की **विश्वसनीयता** कहते हैं। जैसे– एक घड़ी में बताया गया समय दूसरे घड़ी में भी समान हो।

iii. न्यायसंगतत– एक परीक्षक या शिक्षक को किसी परीक्षण में पक्षपात नहीं करना चाहिए। तथा परीक्षक की न्यायसंगतता मूल्यांकन पर स्पष्ट प्रभाव छोड़ती है। परीक्षक द्वारा किया जाने वाला मूल्यांकन आदर्श मूल्यांनक होता है।

iv. उपयोगिता– मूल्यांकन की प्रक्रिया में लागत, समय, प्रयोग और सरलता व्यवहारिक होना चाहिए तथा भाषा प्रयोग सामान्य होना चाहिए।

v. उपयोगिता– मूल्यांकन प्रक्रिया छात्र एवं शिक्षक दोनों के लिए उपयोगि होता है जिसमें छात्र अपनी त्रुटियों को दूर करता है तथा शिक्षक निदानात्मक से उपचारात्मक शिक्षण का प्रयोग करता है।

अधिगम एवं मूल्यांकन–

1. **अधिगम में मूल्यांकन–** अधिगम में मूल्यांकन अध्यापन तथा अधिगम के केंद्र में प्रश्न रखता है। यह उपयोगी उत्तर पर केंद्रित न होकर उपयोगी प्रश्न एवं जिज्ञासा पर केन्द्रित होता है। इसे निर्माणात्मक मूल्यांकन कहते हैं।

2. अधिगम के रूप में मूल्यांकन – यह मूल्यांकन स्वमूल्यांकन का अवसर उपलब्ध कराता है। इसमें त्रुटियों को जानना एवं तुरंत विचार प्रकट करना तथा प्रतिपुष्टि प्राप्त करना शामिल होता है। इस मूल्यांकन की उपयोगिता छात्रों के समायोजन से संबंधित होती है।

3. अधिगम के लिए मूल्यांकन– ऐसी मूल्यांकन प्रक्रिया जो किसी क्रिया या अधिगम के प्रक्रिया के अन्वरत चलते रहने के बीच में सुधार करने के लिए किया जाता हो, अधिगम के लिए मूल्यांकन कहलाता है।

जैसे– बावर्ची द्वारा भोजन बनाते समय चखना, शिक्षक द्वारा अध्यापन करते समय प्रश्न पूछना आदि।

4. अधिगम का मूल्यांकन– ऐसी मूल्यांकन प्रक्रिया जिसमें ज्ञान, अभिवृत्ति, मनोवृत्ति एवं कौशल की मात्रा का मूल्यांकन किया जाता है, अधिगम का मूल्यांकन कहलाता है।
जैसे– अध्यापन कार्य पूरा होने पर शिक्षक द्वारा किया जाने वाला मूल्यांकन

बाल केन्द्रित शिक्षा

बाल केन्द्रित शिक्षा में शिक्षा का केन्द्र बिंदु बालक होता है। इसके अंतर्गत बालकों की रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जाती है। इसलिए बाल केंद्रित शिक्षा को जीवन शिक्षा प्रणाली कहा जाता है। इसमें शिक्षक बालकों की समस्याओं का निरीक्षण करके परामर्श द्वारा समस्या दूर करने का प्रयास करता है। शिक्षक द्वारा बालकों को स्वालंबी बनाने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित करने एवं निर्णय लेने की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

बाल केन्द्रित शिक्षा की उद्देश्य–

1. इस शिक्षा में छात्रों के व्यक्तिगत विशेषणों का ध्यान रखना चाहिए।
2. इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों का संपूर्ण विकास करना है।
3. इस शिक्षा द्वारा बालक को हस्तपरक कौशलयुक्त बनाना है।
4. भारत में बाल केन्द्रित शिक्षा का प्रारंभ गिज्जू भाई बधेका ने किया
5. बाल साहित्य कविता लेखन तथा पठन के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

बाल केंद्रित शिक्षा की विशेषताऐं–

1. बाल केन्द्रित शिक्षा में बालकों की आवश्यकता, रूचि के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती है।
2. शिक्षकों को बालकों का व्यक्तिगत भेद जानने के लिए मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए तथा निर्देशन परामर्श द्वरा छात्रों की समस्याओं को दर करने का प्रयास करना चाहिए।
3. बालकों के ज्ञान तथा विकास के लिए मूल्यांकन की आवश्यकता होती है इससे छात्रों में प्रेरणा, रूचि तथा नवाचार उत्पन्न कराया जाता है। मूल्यांकन दो प्रकार से होते है–
   (a) मूल्यांकन छात्रों के लिए उनकी समझ, रूचि, विश्लेषण तथा सृजनात्मक कार्यो` अनुप्रयोग का मापन करने के लिए।
   (b) शिक्षकों का मूल्यांकन, निरंतरता, अधिगम अंतराल एवं छात्रों के द्वारा प्राप्त प्रतिपुष्टि के आधार पर शिक्षक छात्र संबंध को बेहतर बनाने के लिए किया जाता है।

पाठ्यक्रम–

1. पाठ्यक्रम सरल एवं उपयोगी होना चाहिए।
2. वातावरण के अनुरूप होना चाहिए।
3. जीवन उपयोगी होना चाहिए।
4. पूर्वज्ञान पर आधारित होना चाहिए।
5. छात्रों की रूचि, आवश्यकता एवं शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला होना चाहिए।
6. छात्रों में विभिन्नताओं का ध्यान रखकर राष्ट्रीय भावना को विकसित करने वाला होना चाहिए।

बाल–केन्द्रित शिक्षा का महत्व–

1. बाल केंद्रित शिक्षा में बालकों की आवश्यकता, रूचि के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती है।
2. शिक्षकों को बालकों का व्यक्तिगत भेद जानने के लिए मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए तथा निर्देशन परामर्श द्वारा छात्रों की समस्याओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
3. बालकों के ज्ञान तथा विकास के लिए मूल्यांकन की आवश्यकता होती है इससे छात्रों में प्रेरणा, रूचि तथा नवाचार उत्पन्न कराया जाता है। मूल्यांकन दो प्रकार से होता है–

   (a) मूल्यांकन छात्रों के लिए उनकी समझ, रूचि, विश्लेषण तथा सृजनात्मक कार्यो के अनुप्रयोग का मापन करने के लिए शिक्षकों का मूल्यांकन, निरंतरता, अधिगम अंतराल एवं छात्रों के द्वारा प्राप्त प्रतिपुष्टि के आधार पर शिक्षक छात्र संबंध को बेहतर बनाने के लिए किया जाता है।

पाठ्यक्रम–

1. पाठ्यक्रम सरल एवं उपयोगी होना चाहिए।
2. वातावरण के अनुरूप होना चाहिए।
3. जीवन उपयोगी होना चाहिए।
4. पूर्वज्ञान पर आधारित होना चाहिए।
5. छात्रों की रूचि, आवश्यकता एवं शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला होना चाहिए।
6. छात्रों में विभिन्नताओं का ध्यान रखकर राष्ट्रीय भावना को विकसित करने वाला होना चाहिए।

बाल–केंद्रित शिक्षा का महत्व–

1. बालक को मुख्य महत्व प्रदान किया जाता है।
2. सरल एवं रूचिपूर्ण शिक्षा।
3. आत्म अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करने वाली शिक्षा।
4. ज्ञानेंद्रिय प्रशिक्षण पर बल (करके के सीखना)।
5. व्यक्तिगत, व्यवहारिक एवं सामाजिक शिक्षा।

बाल–केंद्रित शिक्षा के सिद्धांत

1. प्रेरणा का सिद्धांत
2. व्यक्तिगत अभिरूचि का सिद्धांत
3. लोकतांत्रिक सिद्धांत
4. चयन का सिद्धांत
5. क्रियाशीलता का सिद्धांत

बाल–केंद्रित शिक्षा में शिक्षक का महत्व–

1. इस शिक्षा में शिक्षक की भूमिका सहयोगी तथा मार्गदर्शन की होती है।
2. इस शिक्षा में न केवल पुस्तकीय ज्ञान बल्कि व्यवहारिक एवं सामाजिक ज्ञान प्रदान करना भी शिक्षक का कार्य होता है।
3. यह शिक्षा शिक्षकों की योग्यता, स्थानीय पर्यावरण का चयन, समायोजन की आवश्यकता तथा पाठ्यक्रम का ज्ञान का निर्धारण करती है।

वंचित बालक: ऐसे बालक जो सामान्य सुख सुविधाओं से दूर हो, वंचित बालक के श्रेणी में आते हैं। अर्थात् वह बालक सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से अलाभवान्वित श्रेणी में रखे जाते हैं, वंचित बालक होते हैं।

वंचित बालकों की पहचान–

1. ऐसे बालक जो बाल्यकाल से ही उद्दीपकों की न्यूनता से सम्बन्धित होते हैं
2. एसे बालक जो सामाजिक रूप से पिछड़े हो।
3. ऐसे बालक जो धन के कारण सामान्य सुख–सुविधा को प्राप्त नहीं कर पाते।
4. ऐसे बालक जिनके माता–पिता अशिक्षित हो।
5. ऐसे बालक जो रूढ़ीवादी परिवार से सम्बन्धित हो।

वंचित बालकों के प्रकार के होते हैं–

1. सामाजिक रूप से वंचित बालक– ऐसे बालक जो गरीबी, अशिक्षा तथा परिवार के खराब स्थिति के कारण वंचित हो चुके हो।
2. आर्थिक दृष्टि से वंचित बालक–ऐसे बालक जिन्हें आर्थिक असमानता के कारण सामान्य सुख–सुविधायें नहीं प्राप्त होती है, उन्हें आर्थिक दृष्टि से वंचित बालक कहा जाता है।
3. सुविधाओं की दृष्टि से वंचित बालक–समय, दूरी तथा आवागमन की असुविधा के कारण उत्पन्न वंचन के शिकार बालक इस श्रेणी में शामिल होते हैं।

वंचन का प्रभाव– यह प्रभाव बालकों पर 3 रूप में पड़ता है–

1. संज्ञानात्मक आधार पर
2. अभिप्रेरणात्मक आधार पर
3. शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर

वंचित बालकों की शिक्षा– ऐसे बालकों को समावेशी आधार पर शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जो बालकों में समानता का भाव उत्पन्न करे एवं बालकों के सम्पूर्ण विकास को प्रोत्साहित करें। इसमें शिक्षण कार्य निम्न प्रकार से करने चाहिए–

- बालकों के सृजनशीलता को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- बालकों में हीन भावना रोकने के लिए वर्गगत सुविधा प्रदान करनी चाहिए। तथा शिक्षण वातावरण प्रेरणादायक बनाना चाहिए।
- शिक्षकों को बालकों के अनुभव को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करना चाहिए। तथा स्वतंत्र निर्णय लेने की प्रवृति विकसित करनी चाहिए।
- विद्यालय स्तर पर बालकों के लिए शैक्षिक प्रारूप तैयार करना चाहिए एवं आवासीय विद्यालय, छात्रवृत्ति, नि:शुल्क पाठ्यपुस्तक एवं गणवेश प्रदान करना चाहिए।

- आदिवासी तथा साधनहीन क्षेत्रों में अलग विद्यालय की स्थापना करनी चाहिए।
- शिक्षकों को भावनात्मक रूप से प्रशिक्षित करना चाहिए जिससे वह बालक को समाज से जोड़े उसे दयनीय न समझे।

पिछड़े बालक: विशिष्ट बालकों की श्रेणी में पिछड़े बालकों को शामिल किया जाता है।

वर्ट के अनुसार, '' वह बालक जो अपनी कक्षा के एक कक्षा नीचे के प्रश्नों को हल करने में अक्षम हो, पिछड़ा बालक कहा जाएगा।''

स्टेनले हॉल के अनुसार, 'वह बालक जिसकी शैक्षिक उपलब्धि उसके स्वभाविक योग्यता स्तर से कम हो पिछड़ा बालक कहलाएगा।''

टी.के. मेनन के अनुसार, ''यह बालक जो अपनी कक्षा के औसत आयु से एक वर्ष बड़ा है, पिछड़ा बालक होगा।

पिछड़े बालकों की पहचान–

- ऐसे बालक जिनकी बुद्धि लब्धि 75 से 90 (मौरिल) के बीच में होता है।
- ऐसे बालक जिनमें ध्यान व रूचि कम समय के लिए होता है।
- ऐसे बालक जिनमें सूक्ष्म विचारों की कमी पायी जाती है।
- ऐसे बालक जिनमें शैक्षिक, सामाजिक–क्रियाकलाप में रूचि नहीं पायी जाती ।

पिछड़ेपन के कारण– पिछड़ेपन के निम्नलिखित कारण होते हैं–

1. **शरीरिक कारण–** ऐसे बालक जो शारीरिक दोष से पीड़ित हो उनमे पिछड़ापन पाया जाता है।

2. **मानसिक कारण–** ऐसे बालक जिनमें बुद्धि–लब्धि तथा अभिरूचि की कमी पायी जाती है, उनमें पिछड़ेपन का मुख्य कारण मानसिक कमी होती है। वर्ट ने अनुसार, ''पिछड़ेपन का एकमात्र कारण कम बुद्धि–लब्धि है।''

3. **पारिवारिक कारण–** माता–पिता का अनैतिक प्रवृत्ति होना परिवार में तनाव होना घरेलू झगड़े एवं परिवार की आर्थिक स्थिति पिछड़ेपन का पारिवारिक कारण है।

4. **स्कूल का वातावरण–** स्कूल का वातावरण यदि दोषपूर्ण हो तो बालकों का वास्तविक विकास नहीं हो पाता है जिससे बालाकें में पिछड़ेपन उत्पन्न होता है, जिसका प्रमुख कारण निम्न है–

- दोषपूर्ण पाठ्यक्रम प्रणाली और शिक्षण विधियों का प्रयोग।
- शिक्षकों का छात्रों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार।
- अनुशासनहीनता, प्रेरणा की कमी तथा शिक्षक छात्र के मध्य तनाव ।
- विद्यालय में सहगामी क्रियाओं का अभाव एवं शिक्षकों द्वारा लापरवाही का प्रदर्शन।
- अयोग्य शिक्षक शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श में कमी तथा विद्यालय में अनुपस्थित भी पिछड़ापन उत्पन्न करती है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण– बालकों के व्यक्तिगत के विकास के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक आवरण का होना आवश्यक है। इसकी कमी के कारण बालकों में सामाजिक पिछड़ापन उत्पन्न होता है। ''सामाजिक संपर्क तथा सांस्कृतिक विशेषता बालकों में श्रेष्टता का निर्माण करती है। ''– गिजु भाई बधेका

पिछड़े बालकों की शिक्षा– एक शिक्षक को पिछड़े बालकों के शिक्षा प्रबंधन में निम्नलिखित कार्यो का उपयोग करना चाहिए–

1. शिक्षक को बालकों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
2. हस्तकला कौशल की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।
3. निदानात्मक आधार पर उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करना चाहिए।
4. घर एवं विद्यालय में समायोजन करने में सहायता प्रदान करनी चाहिए
5. विशिष्ट पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए।
6. विद्यालय से पलायन रोकना चाहिए।
7. शिक्षा मनोवैज्ञानिकों की सहायता लेनी चाहिए।
8. समय–समय पर निर्देशन एवं परामर्श प्रदान करना चाहिए।

दिव्यांग बालक– ऐसे बालक जो सामान्य बालकों से शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक रूप से अक्षम होते हैं, उन बालकों को दिव्यांग बालक कहा जाता है।

दिव्यांग बालकों के प्रकार–

1. **अपंग (cripple)**– ऐसे बालक जो जन्मजात अपंगता या र्दुघटना के कारण आंशिक या पूर्ण रूप से शारीरिक क्रिया करने में अक्षम होते हैं, उन्हें अपंग बालक कहते हैं।

2. **दृष्टि दोष बालक–** ऐसे बालक दो प्रकार के होते है। पूर्ण अंध बालकों को ब्रेल लिपि में तथा अर्द्धअंध बालकों को समावेशी शिक्षा प्रदान किया जाता है। अर्द्ध अंध बालकों में सामान्य दृष्टि दोष पाया जाता है। ऐसे बालको की पहचान पुस्तक को झुक कर

पढ़ने, आँखो को बार–बार मलने तथा देखने में कठिनाई का अनुभव करने वाले होते हैं।

अर्द्धअंध बालकों की शिक्षा–

→ कक्षा में उचित प्रकाश का प्रबंध करना।

→ मोटे टाइप के पुस्तकों का प्रयोग करना।

→ बड़े तथा सुस्पष्ट अक्षरों में श्यामपट्ट लेखन करना ।

→ आवश्यकता पड़ने पर ऐनक का प्रबंध कराना।

→ अर्द्ध एवं पूर्ण अंध बालकों को पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा हस्तकला का प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए।

→ श्रवण दोष युक्त बालक– ऐसे बालक जिनमें सुनने की अक्षमता पाई जाती है उन्हें श्रवण दोष युक्त बालक कहते हैं। ये मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं–

- ऐसे बालक जो जन्मजात या किसी रोग के कारण बहरे हों।
- ऐसे बालक जिन्हें कम सुनाई देता हो।

शिक्षा– संपूर्ण श्रवण दोष वाले बालकों को विशेष विद्यालयों में सांकेतिक प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

सांकेतिक शिक्षा का प्रारंभ जॉन ट्रेसी ने Los Angles से किया था। इसे विद्यालय न कहकर 'निदानशाला (Diagonsis Centre)' कहा जाता है। भारत में Gurgaon, Rohtak, Delhi, Bengoluru और Mumbai में सांकेतिक शिक्षा केंद्र है।

अर्द्धश्रवण दोष युक्त बालक को समायोजन करने में सहायता प्रदान करनी चाहिए। कक्षा में आगे के पंक्ति में बैठाना चाहिए। एवं ऐसे बालकों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

4. वाणी दोष युक्त बालक– ऐसे बालक जिनमें हक्लाना, तुतलाना, बहुत धीरे बोलना, बहुत तेज बोलना या बिल्कुल न बोलना के दोष शामिल होते हैं। इन बालकों में इस दोष के कारण हीन भावना, आत्मविश्वास की कमी, संवेगात्मक अस्थिरता आदि का उतपनन होना स्वाभाविक है।

शिक्षा– इनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अध्ययन की गलत आदतों पर नियंत्रण करना चाहिए। विशेष शब्दों का बार–बार उच्चारण करनाना चाहिए। श्रव्ण सामग्री द्वारा शब्दों का सही उच्चारण कराना चाहिए। बोलने का उचित प्रशिक्षण देना चाहिए। अभिभावकों को शल्यचिकित्सा के लिए बरतना चाहिए।

5. मानसिक रूप से दिव्यांग बालक– ऐसे बालक जिनमें शिक्षक द्वारा दिए गए निर्देशन की समझ नहीं हो पाती या तो बालक हीन ग्रन्थियों से ग्रसित होते हैं तथा जिनकी बुद्धि–लब्धि 80 से कम होती है। मानसिक रूप से पिछड़े या दिव्यांग बालक कहे जाते हैं।

मानसिक दिव्यांगता का कारण– मानसिक दिव्यांगता बालकों में अनेक कारणो से उत्पन्न होती है। मुख्य रूप से चार प्रमुख कारण बाल विकास के अन्तर्गत निर्धारित किए जाते हैं–

1. **वंशानुक्रम–** गर्भावस्था के दौरान माता का व्यवहार, जन्म के समय दुर्घटना, शैशवावस्था में सिर पर चोट, मस्तिष्कीय बुखार,

बीमारी जैसे– मैननजाइटिस, मिनियल काइसिस, जर्मन मिस्लस, जापानी इसेफेलाइटिस एवं कनजियल सिफलिस आदि रोगों के कारण बालकों में मानसिक पिछड़ापन उत्पन्न होता है।

2. **संवेगात्मक कारण–** मानसिक पिछड़ापन का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। संवेगों पर नियंत्रण न कर पाने के कारण बालकों में समायोजन की कमी पाई जाती है जिसके कारण मानसिक पिछड़ापन उत्पन्न होता है।

3. **सामाजिक कारण–** परिवार की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण बालकों में मानसिक पिछड़ापन उत्पन्न होता है।

4. **मनोवैज्ञानिक कारण–** बालकों में हीन भावना, प्रतिक्रिया का अभाव आदि कारण से मानसिक पिछड़ापन उत्पन्न होता है।

मानसिक पिछड़े बालकों की शिक्षा–

1. ऐसे बालकों में समायोजन की समस्या पाई जाती है। इसलिए इन बालकों को समावेशी शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

2. ऐसे बालकों में संवेगात्मक समस्याएँ उत्पन्न होती है। जैसे– छोटी–छोटी बातों में डरना, रोना आदि। इसलिए इन बालकों को संवेगात्मक प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए।

3. शिक्षक को अभिभावकों से मिलकर शारीरिक और मानसिक विकास के लिए उचित परामर्श प्रदान करना चाहिए।

समस्यात्मक बालक–

ऐसे बालक जो अपने व्यवहार से विद्यालय, परिवार एवं समाज में समस्या उत्पन्न करता हो, समस्यात्मक बालक कहलाता है। वेलेंटाइन के अनुसार, वह बालक जिसका व्यवहार या व्यक्तित्व असामान्य हो, समस्यात्मक बालक कहलाता है।

समस्यात्मक बालक के प्रकार–

i. झूठ बोलने वाला
ii. चोरी करने वाला
iii. क्रोध करने वाले।
iv. एकांत पसंद करने वाले।
v. आक्रमणकारी व्यवहार करने वाले।
vi. विद्यालय से भाग जाने वाले।
vii. कक्षा में देर से आने वाले।
viii. भयभीत रहने वाला।

ix. गृहकार्य न करने वाले।
x. छोटे बच्चों को तग करने वाले।

समस्यात्मक बालकों की शिक्षा–

1. बालकों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
2. बालकों के रूचि एवं क्षमता के अनुकूल शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। कक्षा में अतिरिक्त कार्य प्रदान करना चाहिए। जैसे– अनुशासन स्थापित करनवाना, श्यामपट्ट साफ करवाना आदि।
3. शिक्षण विधियों में दृश्य–श्रव्य समाग्रीयों का प्रयोग करना चाहिए।

अधिगम अशक्तता वाले बालक– ऐसे बालक जो पढ़ने लिखने मौखिक अभिव्यक्ति करने में कमजोर या अक्षम होते हैं, उन्हें अधिगम अशक्तता वाले बालक कहा जाता है।

अधिगम अशक्तता के कारण–

1. **अफेज्या–** यह भाषा एवं संप्रेषण संबंधी अधिगम अशक्तता है। इसयके करण बालक मौखिक अभिव्यक्ति नहीं कर पाता।
2. **डिसफेज्या–** मस्तिष्कीय क्षति के कारण जिन बालकों में मौखिक अक्षमता पाई जाती है उसे डिसफैज्या की समस्या होती है।
3. **अलेक्सिया–** मस्तिष्कीय क्षति के कारण पढ़नें में उत्पन्न अक्षमता को अलेक्सिया कहा जाता है जिसे शब्द अंधता, पाठ्य अंधता या विजुअल अफेज्या भी कहा जाता है।
4. **डिसलेक्सिया–** यह एक पठन विकार है जिसमें बालक कई शब्दों या कुछ अक्षरों में अंतर नहीं कर पाता। जैसे– saw को was ।
5. **अप्रेक्सिया–** यह एक शारीरिक विकार है। यह मस्तिष्क में cerebruen की क्षति के कारण उत्पन्न होता है। इससे पीड़ित बालक सूक्ष्म गतिक कौशल करने में अक्षम होता है। जैसे– दौड़ना, लिखना आदि।
6. **डिस्प्रैक्सिया–** यह तंत्रिका तंत्र संबंधी विकार है। इसमें बालक के आँख और हाथ के मध्य संतुलन स्थापित नहीं हो पातां इसे संवेदी विकार (मदेवतल कपेमेम) कहा जाता है।
7. **डिस्ग्राफिया–** यह लेखन संबंधी विकार है। यह रोग हाथ, हथेली तथा अंगुली के बनावट एवं मस्तिष्कीय समस्याओं के कारण होता है।
8. **डिस्केल्कुलिया–** यह गणितीय अक्षमता है। इसमें बालक में अंक गणित समझने में समस्या होती है। इसे न्युमेरोलेक्सिया भी कहा जाता है।
9. **डिसथिमिया–** यह तनाव से उत्पन्न मानसिक समस्या है। इसके कारण बालकों में मन:स्थिति निम्न होती है।
10. **डिसमार्फिया–** यह भ्रम संबंधी विकार है।
11. **डिमेन्सिया–** यह भूलने का विकार है।

अधिगम अशक्तता वाले बालकों की पहचान–

i. ऐसे बालक जो पठन लेखन आदि कार्यो में उदासीन रहते हैं तथा मौखिक अभिव्यक्ति में कठिनाई का अनुभव करते हैं।
ii. ऐसे बालक जिनमें वर्तनी अशुद्धियाँ पाई जाती है।
iii. सदैव उदास रहने वाले, कक्षा में देर से आने वाले तथा गृहकार्य न करने वाले बालक।
iv. चतुर प्रतीत होने वाले बालक जिनमें कोई शारीरिक दोष न हो किंतु परीक्षा का निष्पादन उचित न प्राप्त होना।

अधिगम अशक्तता वाले बालकों की शिक्षा–

i. इन बालकों के परिवार के वातावरण में सुधार लाने वाला परामर्श देना चाहिए।
ii. इनके साथ प्रेरणात्मक व्यवहार करना चाहिए।
iii. विद्यालय तथा शिक्षकों को सहयोगात्मक प्रवृत्ति अपनाना चाहिए।
iv. समय–सयम पर मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके इनकी समस्याओं को दूर करना चाहिए।

प्रतिभाशाली बालक– वे बालक जो सामान्य बालकों की अपेक्षा 'बुद्धि, मौलिक चिन्तन कार्य करने की कला तथा जोखिम लेने की क्षमता अधिक रखते हैं, उन्हें प्रतिभाशाली बालक कहा जाता है।

टरमन के अनुसार, ''वे बालक जो सामान्य बालकों की अपेक्षा समान आयु में वरिष्ठ होते हैं, प्रतिभाशाली बालक है।''

कालसनिक के अनुसार, ''एसे बालक जो अपने आयु स्तर के बालकों में अधिक योग्यता का अर्जन (रेटिंग स्केल में) करते है, प्रतिभाशाली बालक कहलाते हैं।''

प्रतिभाशाली बालकों के पहचान–

i. ऐसे बालक जिनमें सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक बुद्धि लब्धि पाई जाती है। 140 से ऊपर प्रतिभाशाली बालक
ii. ऐसे बालक जो सामानय बालकों की अपेक्षा तीव्र शारीरिक एवं मानसिक विकास करते हैं।
iii. एसे बालक जिनमें उच्च जिज्ञासा स्तर एवं कार्य करने की क्षमता पाई जाती है।

iv. ऐसे बालक जिनमें सामाजिक रूप से अधिक परिपक्वता एवं नेतृत्व का गुण पाया जाता है।

नकारात्मक विशेषता–

i. ऐसे बालक महत्वपूर्ण कार्यों में लापरवाह होते हैं।

ii. ऐसे बालक ईर्ष्यालु तथा अहंकारयुक्त होते हैं।

iii. ऐसे बालक पाठ्यक्रम को समझ लेते हैं।, परंतु सहभागी शिक्षण में सहयोग नहीं करते।

प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा–

प्रतिभाशाली बालकों को विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। इन्हें शिक्षित करने के लिए प्रतिभाशाली शिक्षकों की आवश्यकता होती है एवं शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इनकी शिक्षा निम्न प्रकार से होनी चाहिए–

i. ऐसे बालकों को विशिष्ट पाठ्यक्रम प्रदान करना चाहिए।

ii. ऐसा गृहकार्य देना चाहिए जिससे बालकों में मानसिक संतुष्टि हो सकें

iii. ऐसे बालकों को पुस्तकालय की सुविधा प्रदान करनी चाहिए, जिससे उनकी जिज्ञासा शांत हो।

iv. बुरी संगत को रोकना तथा बुरे आदतीकरण के विकास को रोकना एवं सृजनात्मक कार्य को बढ़ावा देना शिक्षा में शामिल होना चाहिए।

सृजनात्मक बालक–

ऐसे बालक जिनकी बुद्धि–लब्धि 130 से 140 के मध्य होती है, सृजनशील बालक कहे जाते हैं। इन बालकों में सृजनात्मक मौलिक चिंतन एवं नव निर्माण की प्रवृत्ति पाई जाती है यह पुरानी समस्याओं को नवीन समाधान के रूप में हल करने का प्रयास करते हैं।

जेम्स ड्रेबर के अनुसार, ''किसी वस्तु का सृजन सृजनात्मकता है तथा सृजनशील व्यवहार करने वाला व्यक्तिसृजनात्मक व्यक्तित्व है।''

गिलफोर्ड के अनुसार, ''तात्कालिक स्थिति में परे जाना और चिंतन के द्वारा मूर्त परिवर्तन करना, सृजनातमकता है।''

टेलर के अनुसार, 'सृजनात्मक बालक में नवीन व्यवहार, आविष्कार नवाचार, उत्पाद एवं आपतित गुणों का समुच्चय पाया जाता है।

सृजनात्मक बालकों की पहचान–

टारेंस से सृजनात्मक बालकों के 84 प्रकार के विशेषताओं का वर्णन किया है परंतु लक्षणों आधार पर इन बालकों की पहचान निम्न प्रकार से किया जाता है–

i. मौलिकता के आधार पर।
ii. स्वतंत्र निर्णय शक्ति के आधार पर।
iii. उत्सुक्ता या जिज्ञासा के आधार पर ।
iv. दूरदर्शीता के आधार पर।
v. विनोदप्रियता के आधार पर।
vi. पहल करने की क्षमता के आधार पर।
vii. उत्तरदायित्व की भावना।

सृजनात्मक बालकों हेतु परीक्षण–

बालकों में सृजनात्मकता का अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है।–

i. चित्र पूर्ति परीक्षण
ii. उत्पाद सुधार परीक्षण
iii. वृत्त परीक्षण
iv. टिन के डिब्बे परीक्षण
v. गिलफोर्ड एंड मैरीफिल्ड परीक्षण
vi. वी.के. पासी सृजनात्मक परीक्षण
vii. वाकर मेंहदी का सृजनात्मक चिंतन परीक्षण

बालकों में सृजनात्मकता का विकास–

शिक्षक केवल शैक्षिक संस्थाऐं बालकों में निम्न विधियों का प्रयोग करके सृजनात्मकता का विकास कर सकते हैं–

i. मस्तिष्क उद्वेलन शिक्षण विधि (Brainstorming teaching method) by ओसवन।
ii. तार्किक शक्ति विधि या साइनेटिक्स विधि by गोर्डन।
iii. सृजनात्मक एवं कलात्मक विधियों को प्रोत्साहित करके।
iv. आत्मशिक्षण विधि को प्रोत्साहित करके।
v. समस्या स्तर की पहचान करके निदान के द्वारा।
vi. बालकों में पाठ्यसामग्री क्रियाओं के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करके।

सृजनात्मक बालकों की शिक्षा–

ऐसे बालकों को सृजनशीलता का विकास करने एवं विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती है।

i. बालकों को शाब्दिक परीक्षण में शब्दों का उत्तर देने की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए।

ii. बालकों में कल्पना तथा मौलिकता का विकास करना चाहिए।

iii. मौलिक अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति करना सीखना चाहिए।

iv. उच्च नैतिक स्तर तथा प्रेरणायुक्त शिक्षा प्रदान करना चाहिए।

v. निबंध, चित्रकला, नाटक, खेल आदि प्रतियोगिताओं के माध्यम से सृजनात्मकता का विकास करना चाहिए।

शिक्षण

शिक्षण का अर्थ सीखने में सहायता करना है। प्रत्येक बालक अपने स्वयं के प्रयासों से तथा अनुभव के आधार पर सीखने की प्रक्रिया को पूरा करता है। सीखने की यह प्रक्रिया एक प्राचीन परंपरा है। इसलिए, शिक्षण को एक सामाजिक प्रक्रिया कहा जाता है। जिसमें शिक्षक सामाजिक परिवेश में अपने ज्ञान, कौशल व दक्षता के आधार पर शिक्षण लक्ष्यों तक पहुंचाने का प्रयास करता है।

शिक्षण एक त्रिध्रुवीय, गत्यात्मक, अन्तः क्रियात्मक एवं सोउद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षण में तीन पक्ष शिक्षक, छात्र और पाठ्यक्रम शामिल होता है। शिक्षण का मुख्य अर्थ निम्न है–

1. शिक्षण का व्यापक अर्थ– शिक्षण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति समस्त प्रकार का अधिगम करता है। यह औपचारिक व अनौपचारिक दोनों प्रकार के साधनों से सीखने सीखाने की प्रक्रिया है।

2. शिक्षण का संकुचित अर्थ– ज्ञान, सूचना, जानकारी व परामर्श देना संकुचित शिक्षण में शामिल होता है। यह शिक्षण पूर्व नियोजित, नियंत्रित और निश्चित वर्ष के लिए प्रदान किया जाता है।

उत्तम शिक्षण की विशेषता– उत्तम शिक्षण छात्रों में सीखने की तीव्र इच्छा का निर्माण करता है एवं शिक्षण की प्रक्रिया में केंद्रिय उद्देश्य का निर्धारण करता है। योकम तथा सिम्पसन ने उत्तम शिक्षण की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं–

i. अच्छा शिक्षण आवश्यक सूचना प्रदान करता है।

ii. यह आदेशात्मक न होकर निर्देशात्मक एवं परामर्श पर आधारित होता है।

iii. उत्तम शिक्षण में हर छात्र महत्वपूर्ण है इसलिए यह लोकतंत्रात्मक आदर्शो पर आधारित होता है।

iv. उत्तम शिक्षण निदानात्मक से उपचारात्मक होता है।

v. उत्तम शिक्षण में छात्र क्रियाशील होते हैं तथा छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती है।

शिक्षण के सिद्धान्त– शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षण सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है। यह सिद्धांत दो प्रकार के होते हैं–

1. शिक्षण के सामान्य सिद्धांत–

i. निश्चित उद्देश्य का सिद्धांत
ii. अनुकूलता का सिद्धांत
iii. सक्रियता का सिद्धांत
iv. लोकतांत्रिक व्यवहार का सिद्धांत
v. पूर्व अनुभव का सिद्धांत

2. शिक्षण का मनोवैज्ञानिक सिद्धांत–

वर्तमान समय में बाल केंद्रित शिक्षा का सम्प्रत्यय मनोवैज्ञानिक शिक्षा है। प्रभावशाली शिक्षण हेतु मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक शिक्षक को इन मनोवैज्ञानिक विधियों के बारे में जानना आवश्यक है। NCF 2009 के अंतर्गत निम्न मनोवैज्ञानिक विधियों का वर्णन किया गया है–

i. अभिप्रेरणा एवं रूचि का सिद्धांत
ii. अभ्यास एवं अभिवृत्ति का सिद्धांत
iii. तत्परता का सिद्धांत
iv. प्रतिपुष्टि एवं पुनर्बलन का सिद्धांत

शिक्षण के उद्देश्य– शिक्षण के उद्देश्य निम्न हैं–

- जीवनपयोगी ज्ञान प्रदान करके छात्रों की कुशलता का अधिगम विकास करना।
- बालकों को स्वयं की भाषा में ज्ञान प्रदान करना।
- बालकों में शारीरिक, मानसिक एवं जन्मजात शक्तियों के लिए अवसर प्रदान करना।
- छात्रों में आत्मविश्वास की भावना जागृत करना।
- उत्तम सामाजिक संबंध स्थापित करने में सहायता प्रदान करना।
- नेतृत्व क्षमता तथा नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विकास करना।
- स्वच्छता तथा अपने परिवेश के प्रति जागरूक बनाना।

शिक्षण सूत्र– शिक्षण सिद्धांतो के आधार पर यह कहा जाता है कि शिक्षण कला और विज्ञान दोनों हैं जिसकी आवश्यकता औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों क्षेत्रों में होती है। शिक्षण सूत्रों का प्रयोग मुख्य रूप से रूसों, हरबर्ट एवं कमेनियस ने प्रारंभ किया था।

वर्तमान समय में प्रमुख शिक्षण सूत्र निम्न है–

i. सरल से कठिन की ओर (from simple to complex)
ii. ज्ञात से अज्ञात की ओर (from know to unknow)
iii. स्थूल से अंश की ओर
iv. पूर्ण से अंश की ओर (from whole to part)
v. अनिश्चित से निश्चितता की ओर
vi. प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर (from direct to indirect)
vii. विशिष्ट से संश्लेषण की ओर
viii. विश्लेषण से संश्लेषण की ओर
ix. मनोवैज्ञानिक से तार्किकता की ओर
x. अनुभव से युक्तियुक्त की ओर
xi. प्रकृति का अनुसरण

संप्रेषण (communication)-

संप्रेषण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की महत्त्वपूर्ण विशेषण है। संप्रेषण में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों विधियों को शामिल किया जाता है। इसलिए संप्रेषण को 'शिक्षण की रीढ़' (Backbone of teaching) कहा जाता है।
संप्रेषण में शिक्षक छात्र एवं सम्बंधित विषयवस्तु को शामिल किया जाता है।

एन्डरसन ''संप्रेषण एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने भावनाओं को दूसरे तक पहुंचाता है।''

बरनार्ड, '' संप्रेषण वह साधन है जिसके द्वारा एक ही संगठन में व्यक्ति एक–दूसरे से जुड़े होते हैं।'

वाकर मेंहदी, '' संप्रेषण विचार विन्मय का साधन है।''

संप्रेषण की विशेषताएँ–

- संप्रेषण पारस्परिक संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया है।
- संप्रेषण द्विपक्षीय प्रक्रिया है।
- संप्रेषण मनोवैज्ञानिक एवं उत्तम शिक्षण के लिए एक बुनियादी तत्व है।
- संप्रेषण प्रक्रिया में प्रत्यक्षीकरण समावेशित होता है।
- संप्रेषण विचारों की स्पष्टता निर्धारित करता है।

संप्रेषण के घटक या कारक– संप्रेषण के मुख्यत: 5 घटक होते हैं–

- प्रेषण (Sender)
- संदेश (Message)
- प्राप्तकर्ता/प्रापक (Receiver)
- प्रतिपुष्टि (Feedback)

Sender → Message → Medium → Receiver

Feedback

संप्रेषण के प्रकार

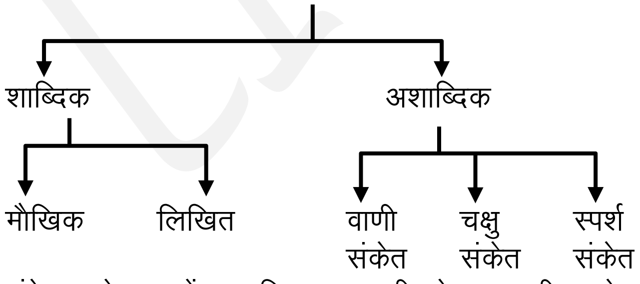

संप्रेषण के प्रकारों का विभाजन प्राणी के द्वारा की जाने वाली औपचारिक एवं अनौपचारिक विधियों पर आधारित होता है। जिसे प्रभावी संप्रेषण कहा जाता है।

प्रभावी संप्रेषण के तरीके (technique of effective Communication)

कक्षा अधिगम में संप्रेषण का मुख्य महत्त्व होता है। यह शिक्षक द्वारा संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करना चाहिए–

- प्रापक की आवश्यकता अनुसार सूचना संप्रेषित करना।
- उचित स्वर एवं भाव–भंगिमा के आधार पर संप्रेषण करना।
- श्रव्य–दृश्य सामग्री का उपयोग करना।
- संप्रेषण का यंत्रिकरण करना।
- प्रापक की सहभागिता।

सूक्ष्म शिक्षण (Micro teaching)– सूक्ष्म शिक्षण का प्रारंभ 1968 ई0 में प्रो0 एलन ने किया था। यह एक प्रयोगशालयी एवं विश्लेषणीय विधि है जिसके माध्यम से शिक्षण कौशल, विकसित किया जाता है।
वी. एम. शोर, सूक्ष्म शिक्षण कम समय में कम छात्रो तथा कम शिक्षण क्रियाओं की विधि है।
प्रो0 एलन, सूक्ष्म शिक्षण सरलीकृत शिक्षण की प्रक्रिया है जो छोटे आकार की कक्षा में कम समय में पूर्ण होती है।

सूक्ष्म शिक्षण की विशेषताएँ–

1. सूक्ष्म शिक्षण में शिक्षण तत्वों को सूक्ष्म स्वरूप प्रदान किया जाता है।
2. यह व्यक्तिशः शिक्षण प्रवृत्ति है।
3. इसमें छात्रों की तत्काल प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है।
4. इसका केंद्र बिंदु छात्राध्यापक होता है।

सूक्ष्म शिक्षण चक्र के प्रकार–

जब शिक्षण कौशल विशेष में छात्राध्यापक निपुर्णता प्राप्त करना चाहता है। तो उसे शिक्षण क्रम के आधार पर निम्नलिखित शिक्षण चक्र विधि का पालन करना होता है–

शिक्षण क्रय

- योजना
- प्रस्तावना
- शिक्षण
- प्रतिपुष्टि
- पुनः शिक्षण
- मूल्यांकन
- गृहकार्य

शिक्षण चक्र

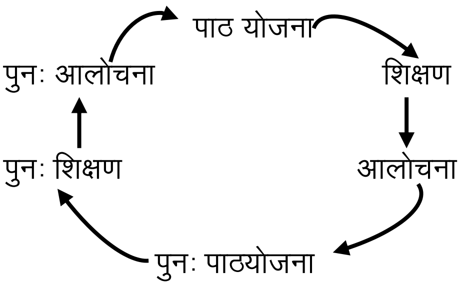

शिक्षण अधिगम सामग्री (Teaching Learning Method)–

वह सामग्री जो सहायक उपकरणों के रूप में छात्रों को सहायता प्रदान करे शिक्षण अधिगम सामग्री कहलाएगा। इससे तात्पर्य उन

सामग्रीयों से है जिनका प्रयोग करने से बालकों की ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती है और वे पाठ के सूक्ष्म तथा कठिन भावों को सरलता पूर्वक सीख सकेंगे।

शिक्षण अधिगम सामग्री के उद्देश्य–

कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षण अधिगम सामग्री शिक्षण स्तर ऊँचा करने के लिए विद्यालय में प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है। जिसमें शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सके। इसके उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. अवकाश के समय का सदुपयोग करना।
2. छात्रों को क्रियाशील बनना।
3. रूचि उत्पन्न करना।
4. पाठ्यसामग्री को सरल तथा बोधगम्य बनाना।
5. अमूर्त पदार्थ को मूर्त रूप देना।

शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रकार–

यह तीन प्रकार के होते हैं–

1. दृश्य–श्रव्य
2. श्रव्य
3. दृश्य
4. अध्यापक द्वारा निर्मित साम्री– मिट्टी की गोली बनाना, चार्ट एवं चित्र बनाना, रेखाचित्र, पोस्टर तथा Craft का निर्माण करना।
5. **बाजार से क्रय सामग्री–** ऐसी सामग्री जिसका निर्माण संभव न हो उसे शिक्षक द्वारा बाजार से क्रय किया जाता है।
   जैसे– test tube, convex & concave mirror, thermometer, class paper weight, कवियों के चित्र, डाक टिकट, रेल टिकट आदि।
6. **विभाग द्वारा प्रदत्त सामग्री–** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में बालकों को operatioj Blackboard के अंतर्गत निम्नलिखित सामग्रियाँ उपलब्ध कराए जाने की व्यवस्था की गई है–

- **मुद्रित सामग्री–** अध्यापकों के लिए विस्तृत कार्यक्रम रूपरेखा एवं अवकाश तालिका।
  छात्रों के लिए नि:शुल्क पुस्तकें, गणवेष, मीड डे मील, जूता–मोजा, बैटरी चलित लाईट आदि।
- गणित किट– इसमें 7 प्रकार की सामग्रीयाँ दी जाती है–
  डोमिनोजः यह लकड़ी की बनी एक आयताकार पट्टी है जो 2 : 1 के आकार की होती है। इससे बालकों को मिनती पढ़ाया जाता है।

घनाकार छड़– यह गुणा, भाग, भिन्न, प्रतिशत का संबंध बताने में उपयोगी है।

क्विजनेयर स्ट्रेप– यह मात्रकों को मूर्त रूप से समझाने में उपयोगी होता है।

निपेयर स्ट्रेप– यह स्थायी मान बताने तथा गुणनफल बताने के लिए उपयोगी होता है।

मिल चक्र– यह धारिता विधि एवं भिन्न चक्र को सरलतापूर्वक समझने के लिए उपयोगी है।

ठोस वस्तुएँ – घन, घनाभ, बेलन, शंकु आदि का ठोस आकार शामिल होता है।

गिनतारा– इसमें संख्याओं का स्थायी मान, गिनती आदि को बताया जाता है। इसके माध्यम से बालक लाख तक की गिनती पढ़ सकते हैं।

- **विज्ञान किट–** विज्ञान शिक्षण के लिए 110 प्रकार की वस्तुओं का उपयोग किया जाता है जिसमें 25 चार्ट 9 छोटे औजार, 48 मापन प्रदर्शन की वस्तुएँ, 6 खनिज के टुकड़े, 10 रासायनिक पदार्थ तथा 12 विविध प्रकार के item उपयोगी होते हैं।
- **भूगोल किट–** चार्ट, ग्लोब, एवं सूर्य चंद्रमा के आकार, गोला प्रयोगशाला दंड आदि।

निर्देशन एवं परामर्श तथा सहयोग देने वाली संस्थाएँ–

1. **निर्देश–** व्यक्ति की सहायता करने वाला एक साधन है। निर्देश एक व्यक्ति कार्य है जो किसी अन्य व्यक्ति को उसकी समस्याओं का समाधान करने के लिए दिया जाता है।

निर्देश मुख्यतः तीन प्रकार का होता है–

- **व्यक्तिगत निर्देशन–** इसमें निर्देशन व्यक्तिगत स्तर पर संपर्क करके समस्याओं का अध्ययन करता है तथा निर्देश प्रदान करता है। **जैसे–** बुद्धि परीक्षण उपलब्धि परीक्षण, प्रश्नावली परीक्षण आदि।
- **व्यक्तिगत निर्देशन–** इसमें निर्देशक व्यक्तिगत स्तर पर संपर्क करके समस्याओं का अध्ययन करता है तथ निर्देश प्रदान करता है। जैसे– बुद्धि परीक्षण उपलब्धि परीक्षण, प्रश्नावली परीक्षण आदि।
- **सामूहिक निर्देशन–** इसमें एक समय में अनेक छात्रों को निर्देशन दिया जाता है। यह विधि फिजूलखर्ची कम करती है। इस विधि द्वारा मनोवैज्ञानिक परीक्षण, पारिवारिक दशाओं का अध्ययन तथा अनुगामी कार्यक्रम का अध्ययन किया जाता है।
- **व्यवसायिक निर्देशन–** विद्यालय के पाठ्यक्रम के साथ–साथ व्यवसाय के संबंध में अनेक सूचनाऐं दी जाती है जिसे व्यवसायिक निर्देशन करहते है।

निर्देशन का उद्देश्य– विद्यालय में आने वाले छात्र अपरिपक्व होते हैं इसलिए वह उचित निर्णय लेने में अक्षम होते हैं। ऐसे बालकों को निर्णय लेने में सहायता करना ही मुख्य लक्ष्य होता है जिससे वह अपनी दैनिक समस्याओं को सुलझाने में समर्थवान हो सके एवं आत्म निर्देशित बन सके।

2. **परामर्श–** परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें अनेक विधियों का उपयोग करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तथा समस्याओं का प्रयास किया जाता है।

परामश, परामर्शी एवं परामर्शदाता के मध्य अन्तः क्रियात्मक प्रक्रिया होती है। जिसमें परामर्शदाता अपने अनुभव प्रशिक्षण एवं शिक्षा के द्वारा परामर्शी को सहायता देता है।

परामर्श के उद्देश्य–

i. छात्र को अपनी समस्याओं के समाधान हेतु योजना बनाने में सहायता करना।
ii. शैक्षिक प्रगति के लिए प्रेरणा प्रदान करना।
iii. शैक्षिक एवं व्यवसायिक चयन की योजना बनाने में सहायता करना।
iv. छात्रों की रूचि, योग्यता एवं अभिवृत्ति को समझकर विकास में सहायता प्रदान करना।

परामर्श की विधियाँ– परामर्श की निम्नलिखित विधियाँ हैं–

1. **स्वीकृत विधि–** ऐसी विधि जिसमें ठीक है, अच्छा है कहकर, छात्रों को प्रेरणा प्रदान की जाए तथा उनके विचारों को स्वीकृति प्रदान की जाए।
2. **पुनरावृत्ति विधि–** यह छात्रों के द्वारा कही गई बातों और दृष्टिकोण को पुनः करने के लिए उपयोग की जाती है। इससे छात्रों में त्रुटियाँ कम होती है।
3. **मान्यता प्राप्त करने की विधि–** इस विधि में छात्रों के द्वारा कहे गए बातों को या तथ्यपूर्ण विचारों को मान्यता प्रदान करके उनको प्रेरणा देना।
4. **विश्लेषण विधि–** समस्याओं को समझकर उनको तथ्यपूर्वक विश्लेषित करना विश्लेषण विधि कहलाता है।

परामर्श की आवश्यकता–

i. जब व्यक्ति को कठिनाई का अनुभव होता हो।
ii. परामर्शदाता के पास समस्या समाधान करने की सुविधा हो।
iiii. जब बालक अपनी समस्याओं को कहने तथा समझाने में असमर्थ हो।
iv. कुसमायोजन की स्थिति में।

परामर्श देने वाली संस्थाएँ–

i. **मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश–** आचार्य नरेंद्रदेव समिति की अनुसंशा पर 1947 में प्रयागराज में मनोविज्ञान– शाला की स्थापना की गई। इसका अध्यक्ष निदेशक (Director) कहलाता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्राथमिक तथा छात्रों को व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन प्रदान करना है। इसकी एक अन्य इकाई Bureau of psychology, LKO में स्थापित की गई है।

ii. **मण्डलीय मनोविज्ञानशाला–** शिक्षा नीति 1972 के अंतर्गत मंडल स्तर पर मनोविज्ञानशाला की स्थापना की गई। U.P. के 12 मंडलों में मनोविज्ञानशाला है। इसके कार्य निम्न हैं–

- छात्रों को व्यवसाय चुनने में परामर्श प्रदान करना।
- विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को परामर्श देना।
- छात्रों के मनोवैज्ञानिक समस्याओ का निदान करना।

iii. **जिला चिकित्सालय –** मुख्य चिकित्सालय अधिकारी (CMO) के नेतृत्व में विशेष डाक्टरों की समीति का निर्माण होता है। जो विशेष आवश्यकता वाले बालक (दिव्यांगता) के लिए विकलांगता आदि का परीक्षण करके सेवाओं में आरक्षण का लाभ दिलाता है तथा अन्य चिकित्सकीय परामर्श प्रदान करता है।

iv. **जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाएँ (DIET)–** यह छात्रों तथा शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करने तथा मनोवैज्ञानिक विधियों को व्यवहार में लाने का प्रशिक्षण देता है।

v. समुदाय एवं विद्यालय की सहयोगी समीतियाँ– यह बालकों को अनौपचारिक शिक्षण प्रदान करने तथा बाह्य कुशलता सीखाने में सहयोगी होती है। जैसे– रेखा संगठन, मातृ शिक्षा समीति, मीना मंच, तरंग–आओ करके सीखें।

vi. **ग्राम शिक्षा समीति–** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1948 के अंतर्गत प्रत्येक गाँव में पंचायत स्तर पर ग्राम शिक्षा समीति का गठन होता है। जिसका अध्यक्ष ग्राम प्रधान होता है एवं सचिव प्रधानाध्यापक होता है। इसका प्रमुख कार्य निम्न है–

- समुदाय को गतिशील करना।
- अभिभावकों में जागरूकता लाना।
- विद्यालय प्रबंधन में सहायता करना।
- वैकल्पिक केंद्रो को स्थापित करना।

खेल विधि की आवश्यकता:–

बालकों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए।
रचनात्मक एवं मानसिक शक्तियों के विस्तार के लिए।
बालकों में नवाचार, नेतृत्व एवं सहयोगात्मक प्रवृत्ति के विकास के लिए।

खेल विधि के दोष–

यह उच्च शिक्षण के लिए उपयोगी नहीं है।
इस विधि में समूह लाभ नहीं होता है।
इस विधि से शिक्षण का प्रबंधन प्रभावित होता है।
यह विधि औपचारिक शिक्षा प्रदान करने के लिए महँगी होती है।

5. क्षेत्रीय भ्रमण विधि– यह विधि उपयोगी विधि के रूप में प्रयोग की जाती है। इस विधि के द्वारा छात्रों में सामूहिक रूप में कार्य करना, समूह में खेलना तथा करके सीखने की प्रवृत्ति को बढ़ाया जाता है। इस विधि के द्वारा छात्रों को प्रत्यक्ष अध्ययन एवं चिंतन का अवसर उपलब्ध कराया जाता है।
प्रो0 रोग के अनुसार '' बालक की इन्द्रियाँ किसी कार्य को करने में जितनी क्रियाशीलता होती है, अधिगम उतना ही प्रभावी होता है।''

यह विधि मुख्यत: 3 प्रकार की होती है–

1. लघुक्षेत्रीय पर्यटन
2. सामान्य क्षेत्रीय पर्यटन
3. व्यापक क्षेत्रीय पर्यटन

भ्रमण विधि की उपयोगिता–

1. वस्तु दिखाकर ज्ञान प्राप्त करना
2. पहले अनुभव प्रदान कर फिर ज्ञान प्रदान करना।
3. मनोरंजन के माध्यम से ज्ञान प्रदान करना

4. नवीन रूचियों का विकास
5. मानसिक शक्तियों को प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करके विकसित किया जाता है।

सूक्ष्म शिक्षण (Microteaching)

सूक्ष्म शिक्षण प्रशिक्षण से सम्बन्धित एक समप्रत्यय है जिसका प्रयोग सेवारत एवं सेवापूर्व स्थितियों में शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए किया जाता है।

सूक्ष्म शिक्षण की अवधारणा 1968ई0 में प्रो0 एले ने दिया था। जो उन्होंने बताया कि सूक्ष्म शिक्षण सरलीकृत शिक्षण प्रक्रिया जो छोटे आकार की कक्षा में कम समय में पूरा होता है। सूक्ष्म शिक्षण मुख्यत: 5 सिद्धांतों पर आधारित है–

1. यह वास्तविक शिक्षण है।
2. कक्षा शिक्षण की सामान्य जटिलताओं को दूर किया जाता है।
3. अभ्यास क्रम पर नियंत्रण सम्भव होता है।
4. तुरंत प्रतिपुष्टि प्राप्त की जाती है।
5. कम छात्र (5–10 छात्र), कम समय (5–10 मि0) कें आधार पर विषय वस्तु के प्रकरण को कम करके प्रस्तुत किया जाता है।
6. यह व्यक्तिशः प्रशिक्षण की विध है।

सूक्ष्म शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्वः

प्रभावशाली सूक्ष्म शिक्षण के लिए शिक्षक व्यवहार के प्रारूप आवश्यक होती है।
शिक्षक एक उपचारात्मक प्रक्रिया है।
शिक्षक में सुधार लाने के लिए समुचित अवसर दिए जाने चाहिए।
सूक्ष्म, शिक्षण, शिक्षक का अतिलघुरूप होता है।

सूक्ष्म शिक्षण चक्रः–

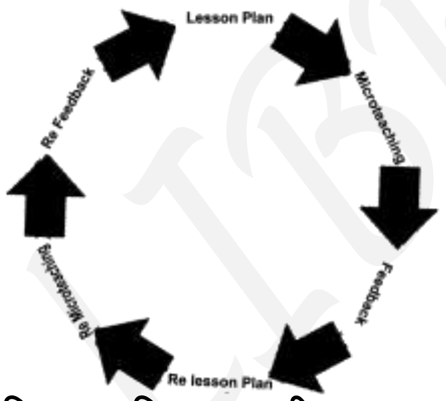

शिक्षण अधिगम सामग्री

शिक्षण में वे सामग्री जो शिक्षण कार्य को सरल तथा प्रभावी बनाने में सहयोग करे शिक्षण अधिगम सामग्री कहलाते हैं।
टी0एल0एम0 ऐसे सहायक साधन हैं जिसके द्वारा शिक्षक एक या एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग करके उनमें सहसम्बंध स्थापित करके अधिगम कराने का प्रयास करता है।

कोठारी आयोग के अनुसार– शिक्षण स्तर को ऊँचा करने के लिए तथा शैक्षिक सुधार के लिए विद्यालय में सहायक सामग्री का होना अत्यंत आवश्यक है।
शिक्षण सामग्री की आवश्यकता एवं महत्वः– विषयवस्तु को रोचक एवं आकर्षक बनाना।
शिक्षण को प्रभावपूर्ण बनाना
भाषागति दोष एवं भ्रम का निवारण करना।
अर्जित ज्ञान को स्थायी बनाना।
कक्षा के नीरस वातावरण का समापन।
छात्रों की शिक्षण अधिगम इन्द्रियों का प्रशिक्षण करना।
ध्यान, एकाग्रता तथा प्रत्यक्षीकरण को बढ़ावा
वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास
अनुशासनहीनता को रोकने में सहायक
कल्पना, तर्क एवं निर्णय शक्ति का विकास
पिछड़े बालकों के लिए उपयोगी।

शिक्षण अधिगम सामग्री को मुख्यत: 4 वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है:–

i. **परम्परागत आधार पर जैसे–** श्यामपट्ट वास्तविक पदार्थ, पाठ्य पुस्तक आदि।
ii. **इन्द्रियों के प्रयोग के आधार पर** इस आधार पर 3–प्रकार के शिक्षण सामग्री होते हैं।
  a. **दृश्य सामग्री** चित्र, मानचित्र, मैजिक लालटेन, फ्लैश बोर्ड, कार्डस बुलेटिन बोर्ड आदि।
  b. **श्रव्य सामग्री** रेडियो, ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर आदि।
  c. **दृश्य–श्रव्य सामग्री** टी0वी0 विडियो टेप, ड्रामा, कठपुतली नृत्य, शैक्षिक भ्रमण, अभिनय आदि।
iii. **शैक्षिक तकनीकियों के आधार पर** इस आधार पर टी0 एल0 एम0 2 प्रकार की होते हैं।
a. **सॉफ्टवेयर सामग्री**
b. **हार्डवेयर सामग्री**
iv. **क्रियात्मक आधार पर–** प्रदर्शनी, विद्यालय की पत्र–पत्रिकाएँ, ड्रामा आदि।

शिक्षण अधिगम सामग्री की विशेषता–
यह अनुभव द्वारा ज्ञानप्रदान में सहायक करना।
यह एक मनोवैज्ञानिक विधि होती है।
शिक्षण में सहायक होता है।

पुस्तक का नाम	विषय
कलख	हिन्दी
गिनतारा	गणित
रेनबो	अंग्रेजी
हमारा परिवेश	सामाजिक अध्ययन
संस्कृत पीयूषम्	संस्कृत

परामर्श में सहयोग देने वाली संस्थाएँ

मनोविज्ञान शाला– मनोविज्ञानशाला उ0प्र0 की स्थापना 1947 ई0 में आचार्य नरेन्द्र देव समिति की अनुशंसा पर हुआ था।

इसका मुख्य कार्य प्राथमिक एवं आध्यात्मिक स्तर के शिक्षकों को शिक्षण, निर्देशन एवं परामर्श प्रदान करने हेतु मनोवैज्ञानिक रूप से सक्षम बनाना तथा छात्रों को व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक परामर्श प्रदान करना है।

मण्डलीय मनोविज्ञान केन्द्र– मनोविज्ञान उ0प्र0 प्रयागराज के कार्यो को सरल एवं सर्वसुलभ बनाने के लिए मण्डल स्तर पर मण्डलीय मनोविज्ञान केन्द्र की स्थापना की गई। इसका मुख्य कार्य निम्न है–

1. यह मनोविज्ञान की सेवाओं को मण्डलीय स्तर पर उपलब्ध कराता है।
2. यह छात्रों को व्यवसाय चयन करने में परामर्श प्रदान करता है।
3. इसके द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बालकों को आवश्यक परामर्श प्रदान किया जाता है।

✷ **जिला चिकित्सालय –** सम्पूर्ण प्रदेश में बालकों को चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध कराने तथा विशेष आवश्यकता वाले बालकों का चिकित्सकीय परीक्षण करके सेवाओं में आरक्षण का लाभ सुनिश्चित कराने का कार्य करती है। इसके द्वारा विद्यालयों में टीके लगवाना, पोलियों खुराक उपलब्ध कराना आदि कार्य शामिल होता है।

✷ **जिला शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान–** इसका मुख्य कार्य सेवाएँ एवं सेवापूर्व शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करना है। एवं उन्हें शिक्षण हेतु मनोविज्ञान विधियों का ज्ञान करना हैं

✷ **समुदाय एव ंविद्यालय सहयोगी समितियाँ–** ग्राम पंचायत समिति , न्याय पंचायत (NPAC) ब्लाक स्तर समिति , शिक्षक अभिभावक संघ, मातृ शिक्षक संघ आदि समितियाँ एवं सामुदायिक संघ विद्यालय के सहायोग एवं संगठन के रूप में उपयोगी होते हैं। इनका कार्य शिक्षणेत्तर कार्यो में एवं विद्यालय प्रबंधन में सहयोग करना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा मे पंचायत एवं स्थानीय निकाय को जोड़ा गया।

शिक्षण अधिगम सामग्रियों की उपलब्धता–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत प्राथमिक विद्यालयों में दशा के सुधार के लिए 1988 में operation Black Board का गठन हुआ जिसका कार्य विद्यालय की इमारत बनवाना तथा विद्यालयों में संसाधन उपलब्ध कराना था। इस योजना के अंतर्गत विद्यालयों को उपलब्ध कराये जाने वाले टी0एल0एम0 निम्न है–

गणित किट– गणित शिक्षण को सुगम एवं सरल बनाने के लिए गणित किट का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रदर्शन TLM Corner के द्वारा विद्यालयों में किया जाता है। इसमें मुख्यत: 7 उपकरण शामिल है–

डोमिनोज– यह गिनती पहचानने, गिनने, जोड़ घटाना करने जैसी क्रियाओं में उपयोगी TLM है।

घनाकार छड़ें– इन छड़ों का उपयोग गुणा, भाग, क्षेत्रफल, आयतन, घन घनाभ आदि संक्रियाओं के लिए किया जाता है।

क्विजनेयर स्ट्रीपस– यह संख्याओं का स्थायी मान निकालने लंबाई तथा मात्रक को मूर्त रूप देने में सहायक होता है।

निपेयर स्ट्रीपस– यह पहाड़ा, गुणनफल आदि। के सत्यापन में उपयोगी होता है।

मिल चक्र– यह भिन्न के संकल्पना को समझने में सहायक होता है।

ठोस आकृतियाँ– यह 5 वस्तुओं का एक सेट होता है। गोला, बेलन, घन घनाभ, शंकु यह बालकों को स्थायी ज्ञान देने में सहायक होता है।

गिनतारा– यह गिनती सीखाने में सहायक होता है। इसमें लकड़ी की गोलियाँ तीलियों में लगी होती हैं इसे स्पाइक गिनतारा भी कहते हैं।

विज्ञान किट: विज्ञान शिक्षण को सुगम एवं सरल बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें 110 वस्तुएँ आती है।

पाठ्यपुस्तक

कक्षा 1:–

पुस्तक का नाम	**विषय**
कलख	हिन्दी

कक्षा 2:–

पुस्तक का नाम	**विषय**
कलख	हिन्द
गिनतारा	गणित

कक्षा 3:–

पुस्तक का नाम	**विषय**
कलख	हिन्द
गिनतारा	गणित
हमारा परिवेश	विज्ञान
रेनबो	अंग्रेजी
संस्कृत पीयूषम्	संस्कृत

कक्षा 4:–

पुस्तक का नाम	**विषय**
कलख	हिन्द
गिनतारा	गणित
रेनबो	अंग्रेजी

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या कार्यक्रम 2005 NCF शिक्षा के एक महत्वपूर्ण है। यह सभ्यता और प्रगति पर आधारित है। इसका ध्येय वाक्य–सृजनात्मकता और उदार आनन्द बचपन की कुँजी है।

इस दस्तावेज में 9 निर्देशक सिद्धांत बनाए गए है।

शिक्षा को बाहय जीवन से जोड़ना।

रटन्त पढाई से मुक्ति।

बालकों के विकास के लिए पाठ्य पुस्तक को केन्द्रीय भूमिका में रखना।

परीक्षा को लचीला बनाना तथा शिक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।

लोकतांत्रि व्यवस्था के अंगर्तत बालकों को राष्ट्रीय विकास हेतु शिक्षा प्रदान करना।

NCF, 2005 को 5 भागों में वर्गीकृत किया गया है–

1. **परिप्रेक्ष्य** :– ''शिक्षा बिना बोझ के'' की सूक्ष्म पर आधारित पाठ्यचर्या के बोझ को कम करना तथा बालकों की बाहरी जीवन से जोड़ना आवश्यक बताया गया है। जिसमें बालक समस्याओं के प्रति संवेदनशील हो तथा बालक में राजनैतिक, आर्थिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की क्षमता विकसित हो।

2. **सीखना तथा ज्ञानः–** इस भाग में बालकों को औपचारिक एवं अनौपचारिक सामाजिक शिक्षा की क्षमता को बढ़ाना तथा बालकेन्द्रित शिक्षा के आधार पर बालकों में संक्रिया बढ़ाना एवं सहभागी शिक्षण को शामिल किया जाता है।

3. **पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्था एवं आकलनः–** इस भाग में भाषा, गणित, विज्ञान तथा शारीरिक शिक्षा प्रदान करने के लिए मातृभाषा का उपयोग आवश्यक बताया गया है। जिसमें बालकों में संज्ञानात्मक विकास सम्भव हो। बालक स्वयं करके सीखने वाली गतिविधियों द्वारा शिक्षा प्राप्त करें एवं सतत् गुणात्मक एवं अवलोकन विधियों का प्रयोग करके समावेशी शिक्षा पर बल दिया गया है।

विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण– विद्यालय में बच्चों की भागीदारी तथा विद्यालय प्रबन्धन को शामिल किया गया है। विद्यालय के अंतर्गत शिक्षण विधियों का प्रयोग करके बालकों को शिक्षा के मुख्यधारा में शामिल करना इसका लक्ष्य बनाया गया है। इसके अंतर्गत सहभागी शिक्षण प्रदान करने के लिए शिक्षक छात्र अनुपात 1 : 30 के आधार पर शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया है।

5. व्यवस्थागत सुधारः इस भाग में शिक्षा की गुणवत्ता के सुधार तथा नवाचार को प्रमुख आधार बनाने पर विशेष बल दिया गया है। इसके द्वारा बालकों को वृहद् सामाजीकरण करने के लिए प्रेरित किया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2009

शिक्षक शिक्षा के उद्देश्य में तथा शिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए 1 अप्रैल 2010 से RTE 2009 पूरे देश में लागू किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य निम्न है–

1. शिक्षक – प्रशिक्षकों का निर्माण करना।
2. शिक्षक के गुणवत्ता में सुधार।
3. शिक्षा में अनुसंधान एवं नवाचार।
4. शिक्षक शिक्षा मुक्त एवं दूरस्थ दोनों आधार पर प्रदान किया जाए।
5. शिक्षक शिक्षा का व्यवसायीकरण।

इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम संरचना, 2003 ने शिक्षक शिक्षा के लिए एक क्रमबद्ध एवं विस्तृत पाठ्य योजना का निर्माण किया जाए इसके महत्त्व निम्न हैं–

1. यह कक्षाकक्ष के अनुसार कमजातीय है।
2. यह शिक्षा द्वारा अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर केन्द्रित है।
3. जाति, लिंग, धर्म, पिछड़ापन आदि कारणों से शैक्षिक वचन को रोकता है।
4. बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षण का प्रावधान करता है।